चन्दामामा





उन दिनों ब्रह्मदत्त काशी का राजा था। बोधिसत्व मगध राज्य में एक गरीब के घर में पैदा हुए। वे मगध राजा के नौकर- चाकरों में से थे।

मगध और अङ्ग देश के बीच में चम्पा नदी बहती थी। उस नदी के नीचे नाग राज्य था। चम्पेय उस राज्य का राजा था। नदी दोनों देशों के मध्य में सीमा थी।

मगध और अङ्ग देश में हमेशा तनातनी रहती। युद्ध होते। कभी मगध हारता तो कभी अङ्ग। एक युद्ध में मगध का राजा हार गया। वह अपने घोड़े पर सवार हो, भागता भागता चम्पा नदी के पास आया। शत्रु के हाथ में पड़ने की अपेक्षा उसने आत्महत्या करनी चाही। इसलिये घोड़े को लेकर वह नदी में कूदा। मगध राजा को लेकर घोड़ा नाग राजा के महल में जा गिरा।

नाग राजा ने सिंहासन से उतरकर, मगध राजा का आदर पूर्वक स्वागत किया। उनका कुशाल-समाचार पूछा। उनकी कहानी भी उसने सुनी।

"जो हो गया है, सो हो गया। आप उसके बारे में चिन्ता न करें। इस युद्ध में मैं आपकी भरसक मदद कर सकूँगा। आप चिन्ता न करें।" इस प्रकार नाग राजा ने उसको आश्वासन दिया।

अपने वचन के अनुसार नाग राजा ने मगध के राजा की मदद की। अङ्ग का राजा, मगध के राजा के हाथ मारा गया। मगध का राजा दोनों देशों पर वैभवपूर्वक शासन करने लगा। दोनों राज्य एक हो गये।

तब से मगध और नाग राजा की परस्पर गहरी मैत्री हो गई। मगध का राजा प्रति वर्ष अपने नौकर-चाकर, दरबारियों के साथ चम्पा नदी के किनारे आता और उत्सव मनाता। उस दिन नाग राजा ऐश्वर्य के साथ नदी में से निकलता, और मगध राजा के लाये हुए उपहारों को सहर्ष स्वीकार करता।

मगध राजा के भृत्यों में से बोधिसत्व प्रति वर्ष नाग राजा के ऐश्वर्य को गौर से देखता। ललचाता। जब वह मरा तो उसके मन में नाग राजा की ही बात थी। इसलिये नाग राजा के मरने के सात दिन बाद वह नाग राजा के रूप में चम्पा राज्य में पैदा हुआ।

क्योंकि वह पिछले जन्म में पुण्यात्मा था, इसलिए अब उसने अपने को साँप के शरीर में देखा, तो उसको अपने उपर घृणा-सी हुई उसको इसका पश्चाताप भी हुआ कि क्यों उसने नागराज के ऐश्वर्य की अपेक्षा की थी। वह आत्महत्या करने की सोच ही रहा था कि सुमन नामक नागकन्या ने, सहेलियों सहित आकर उसको प्रणाम किया। नागकन्या अन्त्यन्त सुन्दर थी।





सुमन को देखकर, नाग राजा आत्म-हत्या की बात मूल गया, और सुमन को पत्नी बनाकर, नागलोक का परिपालन करने लगा। पर कुछ दिन बाद उसने ब्रत, उपवास आदि करके पुण्य कमाना चाहा। इसके लिए, उसने नागलोक छोड़कर मर्त्यलोक जाने का निश्चय किया। जब उपवास का दिन आता, वह अपने राजमहल से निकल, मार्ग के किनारे की बाम्बी पर जा पड़ा रहता और सोचता-"कितना इच्छा हो, अगर मुझे कोई गिद्ध उठा के जाये, कोई सपेरा ले जाये।"

पर उसकी इच्छा पूरी न हुई। रास्ते पर, आने जानेवाले, वाम्बी पर एक साँप को देखकर उसे भगवान समझते और उस पर फूल चढ़ाते, चन्दन चढ़ाते, पूजा करते।

पास के ग्रामवासियों ने उस बाम्बी के समीप एक मन्दिर भी बना दिया। वहाँ लोग आते, मनौतियाँ करते, पुत्र-भिक्षा माँगते और तरह तरह के नैवेद्य चढ़ाते।

नागराजा उपवास के दिन बाम्बी में बिता, कृष्णा-प्रथमा के दिन अपने पर वापिस चला जाता।

एक दिन सुमन ने उससे कहा-"स्वामी! आप प्रायः मर्त्यलोक जाते रहते हैं। वह लोक भयङ्कर है, खतरनाक है। अगर आप पर कोई आपत्ति आई तो मुझे कैसे पता लगेगा?"

नाग राजा ने सुमन को एक नाले के पास ले जाकर कहा-"यह पानी देखो। अगर मुझे कोई चोट लगी तो यह पानी मैला हो जायेगा। अगर कोई गिद्ध मुझे उठा ले गया तो यह पानी सूख जायेगा, और अगर कोई मान्त्रिक पकड़ ले गया, तो यह पानी लाल हो जायेगा।"

काशी राज्य का एक ब्राह्मण नवयुवक तक्षशिला जाकर वशीकरण विद्या सीखकर, अपने घर उसी रास्ते से जा रहा था, जहाँ नाग राजा बाम्बी पर लेटा करता था। नाग राजा को उसने देखा। तुरन्त उस युवक ने साँप को एक टोकरे में पकड़ लिया और पासवाले गाँव में ले जाकर साँप को नचाया। तमाशा देखने के लिए आये हुए लोगों ने नवयुवक को पैसा, ईनाम वगैरह दिया।

"इस छोटे-मोटे गाँव में जब इतना पैसा मिल रहा है, अगर इसको ले जाकर में शहर में दिखाऊँ, तो जाने कितना रुपया मिलेगा।" ब्राह्मण नवयुवक ने मन ही मन सोचा। उस ब्राह्मण नवयुवक को लालच हुआ। वह साँप को साथ लेकर, एक गाड़ी में यात्रा करता करता, एक महीने में सकुशल काशी पहुँचा।

महीना भर नाग राजा ने उपवास किया। ब्राह्मण नवयुवक ने उसे मेण्ढक खाने को दिये, उसने उनको छुआ तक नहीं। "मैं आहार लेता रहा तो मुझे इस टोकरी में ही हमेशा के लिए कैद रहना होगा।" नाग राजा ने जान लिया।



युवक, नाग राजा को, काशी नगर के आसपास के गाँवों में नचाता रहा, उसने खूब पैसा कमाया।

काशी के राजा को भी उस साँप के नाच के मनोरञ्जन के बारे में पता लगा। उसने नवयुवक को बुलाकर साँप को नचाने के लिए कहा।

इस बीच, सुमन ने जब देखा कि महीना हो गया और उसके पति वापस नहीं आये, तो भय के कारण वह नाले में असली बात जानने गई। पानी का रङ्ग खून का-सा हो गया था। सुमन को

मालूम हो गया कि किसी सपेरे ने उसके पति को पकड़ लिया था। वह अपने पति की खोज में निकली। पूछ-ताछ करती, वह जल्दी ही काशी पहुँची।

जब वह काशी पहुँची तो राजमहल में साँप का नाच चल रहा था। राजा और अनेक व्यक्ति तमाशा देख रहे थे। अपनी पत्नी को देखकर नाग राजा शर्मा गया और टोकरी में चला गया।

सुमन ने मानव-सी का रूप धारण किया और राजा के पास जाकर उसने कहा-"महाराज! मुझे पति भिक्षा दीजिये।"

इतने में साँप भी टोकरी में से बाहर आया और सबके देखते देखते, एक सुन्दर नवयुवक बन गया।

काशी का राजा, उस नाग दम्पति को देखकर बड़ा खुश हुआ। उन्हें सप्ताह भर अपने महल में मेहमान रख, उनके साथ वह नागलोक गया।

नागलोक का ऐश्वर्य, वैभव और सौन्दर्य को देख कर, काशी के राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"जब आपके पास इतना वैभव है, विनोद-विलास के साधन हैं, तब आप बाम्बी पर जाकर क्यों लेटते थे?" काशी के राजा ने उत्सुकतावश नाग राजा से पूछा।

"राजा! यहाँ बहुत कुछ है! पर मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग आपके मानव लोक में ही है।" नाग राजा ने उत्तर दिया।

काशी का राजा, यह सुन बड़ा अनन्दित हुआ। जब वह काशी राज्य को वापस जाने लगा, तो नाग राजा ने उसको अनेक उपहार दिये।





[८]

[पिङ्गल फिर एक बार उजड़े मन्दिर में गया। वहाँ के दुष्ट शक्तियों को जीत कर वह महामायावी की समाधि के पास गया। वह महामायावी की अंगुली की अंगूठी, रत्नों से जड़ी तलवार, भूगोल कर सुरक्षित बाहर चला आया। इतने में नदी में जोर जोर से पानी उछलने लगा। उसके बाद]

इतना बड़ा मान्त्रिक पद्मवाद भी नदी में पानी उफनता देख, एक क्षण के लिए पीछे हटा। यह देख पिङ्गल को आश्चर्य हुआ। वह पद्मपाद की बगल में खड़ा खड़ा निर्भय हो पानी को देख रहा था। "पद्मपाद! अब हमारे पास ऐसी शक्ति है न, जिसके द्वारा हम संसार की किसी वस्तु को भी वश में कर सकते हैं? उस हालत में, इस पानी को देख कर हमारे डरने की क्या जरूरत है?" पिङ्गल ने पूछा।

पिङ्गल का यह प्रश्न सुनकर पद्मपाद कुछ सम्भला। वह पिङ्गल की ओर मुड़ा और प्रेम से उसका कन्या थपथपाते हुए उसने कहा-"अगर तेरे जैसा साहसी नोजवान मेरे साथ हो तो मुझे किस बात का डर? तू तो मन्त्र तन्त्र भी नहीं जानता है। पर जो साहस और बहादुरी, तूने दिखाई है,



जायेगी और इसका कारण क्या है, यह अब मुझे पता लगा।"

पिङ्गल ने इस प्रकार अपना सिर घुमाया, जैसे उसे कुछ न मालूम हो। पद्मपाद कुछ कहने जा रहा था कि इतने में, उफलते पानी में से बहुत भयङ्कर आकृतिवाले कुछ व्यक्ति शस्त्र लेकर चिल्ला चिलाकर आपस में लड़ने-झगड़ने लगे।

यह दृश्य देख कर पिङ्गल घबरा गया। "पद्मपाद! अब क्या किया जाए? मैंने अपनी जिन्दगी में आखिर स्वप्न में भी इतनी भयङ्कर शक्लें न देखी थीं। क्या इन पर हमें, अपनी महाशक्ति का उपयोग करना ही होगा न!"

पद्मपाद, एक क्षण सिर झुकाकर रह गया। फिर उसने "हुँ" कह कर पिङ्गल की ओर देखते हुए कहा- "इन शक्तियों को जिसने काबू में कर रखा था, हम उस महामायाबी की समाधि तक पहुँच सके। उसकी शक्तियाँ भी हमने ले ली। इसलिये अब इन दुष्ट पिशाचों का कोई नेता नहीं है। वे सब नेतागिरी के लिए आपस में लड़ रहे

वह निस्सन्देह बहुत प्रशंसनीय है। मैं नदी में आये हुए इस पानी से नहीं डर रहा हूँ पर...." कहते हुए वह अचानक रुक गया और उसने फिर एक बार नदी की ओर देखा।

"आप सोच क्या रहे हैं? बताइये, क्या बात है। मैं जो हूँ आपके साथ!" पिङ्गल ने पूछा।

पद्मपाद ने मुस्कराकर कहा-"हमने महामायाबी से सब महान शक्तियों को ले लिया है। इस कारण से, भल्लूक पर्वत में, जो दुष्ट शक्तियाँ मनमानी करती आई थीं, अब वे निश्शक्त हो जानी चाहिये थी। पर अब उनकी शक्ति और भी बढ़

हैं। अब हमें एक काम करना होगा। भल्लूककेतु की बात तो तू नहीं भूला होगा?"

"भल्लूककेतु! उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ? उसने बताया था न कि वह कभी इस पर्वत प्रान्त का अधिपति था? हमने उसे वचन भी दिया था कि वापसी के रास्ते पर हम उसको बन्धनों से विमुक्त कर देंगे।" पिङ्गल ने कहा।

"हाँ, यह बात है। हमारे लिए अपना वचन पूरा करने का भी अच्छा मौका है। अगर इस भल्लूक पर्वत का कोई अधिपति न रहा, तो ये बड़े छोटे पिशाच, भूत आपस में यों लड़ लड़कर इस प्रान्त में गड़बड़ी पैदा कर देंगे। इसलिए, चलो हम उस भल्लूककेतु को ही इन पर शासन करने का अधिकार दें।"

"बहुत अच्छा सुझाव है। चलिए हम वही करें।" पिङ्गल ने कहा।

"तो तू तुरन्त निकल पड़। तू तो जानता है, जङ्गल में वह नालेवाला इलाका कहाँ है? उसे छुड़ाकर यहाँ ले आ।" पद्मपाद ने कहा।

पिङ्गल यह करने के लिए मान गया। पद्मपाद ने महामायाबी की बज्रों से



बड़ी तलवार को, पिङ्गल को देते हुए कहा-"तेरे वाहन के लिए यह पिशाच गर्दभ है। इस तलवार की मदद से, तू भलूककेतु के बिना समीप गये ही, उसके बन्धन काट सकता है। यह ले तेरा वाहन। " उसने गदा को हवा में घुमाई। तुरन्त, भूमि फटी और उसमें से रेंकता हुआ एक गधा बाहर निकला।

पिङ्गल, महामायावी की तलवार लेकर, पिशाच गर्दभ पर बैठ गया। गधा हवा में उड़ा। पहाड़, नदी, जङ्गल पार कर थोड़ी ही देर में, पिङ्गल उस

नाले के पास पहुँचा, जहाँ भल्लूककेतु बन्धित था।

तलवार हाथ में लेकर गधे पर चढ़कर आकाश में पिङ्गल को जाता देख, भल्लूककेतु जोर से चिल्लाया- "प्रभू! गार्दभेन्द्र मेरी रक्षा करो। मेरे इन जञ्जीरों को तोड़कर पुण्य कमाओ। मैं तुम्हारी कृतज्ञता कभी न भूलूँगा।"

पिङ्गल उहाका मार कर हँसा। वह नाले के किनारे गधे पर से उतरा। "भल्लूक! मुझे कोई देवता समझकर, तू "गार्दभेन्द्र" का खिताब दे रहा है। मैं मनुष्य हूँ। तू पहले मुझे एक बार देख चुका है। मेरा नाम पिङ्गल है। क्यों? कुछ याद है कि नहीं? बोलो!"

"तो आप पिङ्गल ही हैं.... अब मैंने पहचाना। वह मान्त्रिक पद्मपाद आपका गुरू है न, जो महामायावी की समाधि पर धावा बोलने गये थे?" भल्लूक ने, गिड़गिड़ाते हुए पूछा।

"हाँ, तेरी स्मरण शक्ति प्रशंसनीय है!" पिङ्गल ने कहा।

"क्या वे मान्त्रिक कुशल हैं? क्या वे महामायावी की समाधि के पास जा



सके कि नहीं?" यों भल्लूककेतु ने उत्कण्ठा पूर्वक उससे पूछा।

"उस समाधि में मैं गया था, यह देखो जादू की तलवार।" पिङ्गल ने झट तलवार निकाली और उसे भल्लूककेतु की ओर दिखाई। फौरन, आँखों को चौंधियाने वाली किरणें, विद्युत गति से तलवार से निकलीं, और भल्लूककेतु की जञ्जीरों तक गई। तुरन्त लोहे की जञ्जीरें रस्सी की तरह जलकर राख हो गई।

भल्लूककेतु अपने विशाल शरीर को झाड़ता हुआ खड़ा हो गया। कृतज्ञता के आसू उसकी आँखों से निकलने लगे। पिङ्गल के पास आकर उसने साष्टाङ्ग किया और कहा-"प्रभु, आपने मेरे बन्धन काट डाले और मुझे यातनाओं से बचाया। मैं अब नरक से निकल पाया हूँ। मैं अब से आपका दास हूँ। कहिये, अब आपकी क्या अज्ञा है?"

"अब हमें पद्मपाद के पास जाना होगा। महामायाबी की शक्ति के समाप्त होने के बाद, भल्लूक पर्वत के बड़े छोटे भूत, नेतृत्व के लिए आपस में लड़-झगड़ रहे हैं। पद्मपाद, तुम जैसे बलशाली को उन क्षुद्र प्राणियों का शासक





बनाना चाहता है। नहीं तो वे आपस मैं गाँव, शहर, राज्य बाँट लेंगे और दुनियाँ भर की अराजकता फैलायेंगे।" पिङ्गल ने कहा।

पिङ्गल की बात सुनकर भणूककेतु को आश्चर्य हुआ। उसने दोनों हाथ जोड़कर पिङ्गल को नमस्कार करके कहा-"प्रभु, मैं अब इन भूतों पर अधिकार नहीं चाहता। यह अधिकार कितना कष्टप्रद है, मैं यह भलीभाँति जानता हूँ। कोई मान्त्रिक, या साहसी युवक हम पर धावा बोल देता है, हम अपनी शक्ति, भक्ति के बावजूद भी उनका सामना नहीं कर पाते, और हम भाग जाते हैं। यही हमारी जिन्दगी है। मैने अब से मानवों की सेवा करके, जिन्दगी बसर करने का निश्चय किया है। मैं जानता हूँ कि मानवों में आप बहुत साहसी हैं। मुझे अपने दास के रूप में स्वीकार कीजिये। अगर आप चाहें तो मुझे आप अपने अन्य दासों का सरदार नियुक्त कीजिए।"

"शाबाश! मैं तेरी भक्ति और विनय की दाद देता हूँ। पर तेरा कैसे उपयोग करना चाहिए, इस समस्या को सुलझाने का भार मुझ पर नहीं है। पद्मपाद से बातचीत करनी होगी। उनकी राय जाननी होगी। आओ, अब चलें।" पिङ्गल ने कहा।

पिङ्गल यह कहकर पिशाच गधे पर चढ़ने को तैयार था कि भल्लूककेतु ने, गधे का पीठ पकड़कर कहा- "प्रभु! आप जैसे बड़े आदरणीय लोगों का, इस छोटे पिशाच वाहन पर सवारी करना शोभा नहीं देता। मेरे कन्धे पर चढ़िये। एक क्षण में मैं आपको आपके गुरु के पास ले जाऊँगा।" उसने पिशाच गर्दभ को घुमा घुमाकर, पेड़ पर फेंक दिया।


CHITRA

गधे को रेकता, कराहता छटपटाता जाता, भल्लूककेतु थोड़ी देर तक देखता रहा। जब वह आँखों से ओझल हो गया, तो अट्टहास करके उसने कहा-"प्रभु आइये। मेरे कन्धे पर बैठिये।" उसने पिङ्गल से पार्थना की।

पिङ्गल भल्लूककेतु के, जो भालू के रूप में था, कन्धे पर चढ़ बैठा। भल्लूककेतु तुरन्त हवा में उड़ा और चुटकी भर में उसने पिङ्गल को पद्मपाद के पास पहुँचा दिया।

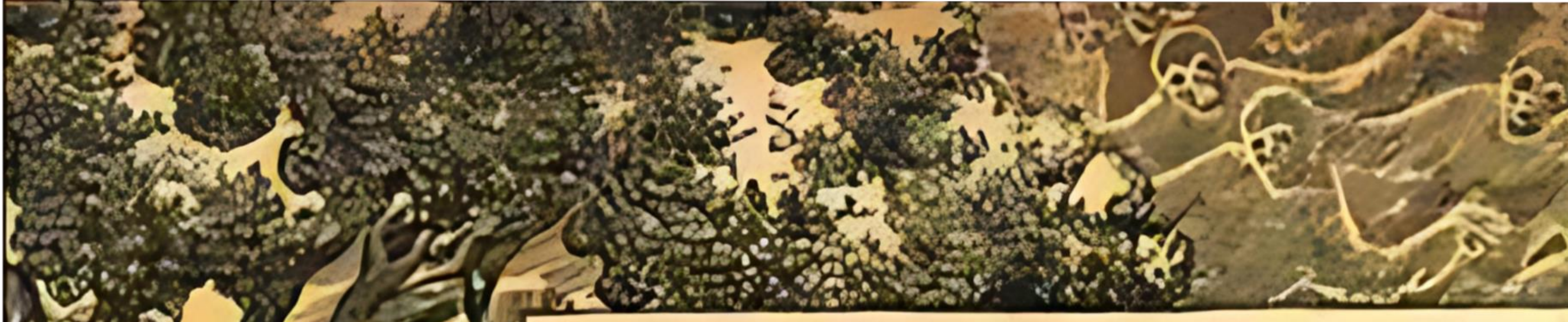
पद्मपाद ने भल्लूककेतु को देखकर मुस्कराते हुए कहा-"ठीक तो हो! उधर देखो।" उसने झाग होती नदी में पास की चट्टानों में लड़ते-झगड़ते राक्षसों को दिखाया। "ये राजा बनने के लिए आपस में एक दूसरे का गला काट रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम उनमें बीच-बँटवारा करके और फिर से उनका नेतृत्व करो।"

पद्मपाद की यह बात सुनते ही भल्लूककेतु का मुँह फीका पड़ गया। उसने कातर दृष्टि से पिङ्गल की ओर देखा। पिङ्गल ने पद्मपाद को भल्लूककेतु की इच्छा बताई। उसने यह भी कहा कि वह भल्लूककेतु को अपना दास बनाने के लिए तैयार था।

"अगर यही बात है, तो मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। पर इन झगड़ते राक्षसों का क्या किया जाये?" पद्मपाद ने पूछा।

"यह मुझ पर छोड़ दीजिये.... मैं " भल्लूककेतु कुछ कहनेवाला ही था कि यह सारा इलाका यकायक गूँज उठा। राक्षस एक स्वर में चिल्लाये- "भल्लूककेतु, ओहो, भल्लूककेतु, ओहो!" चिल्लाते चिल्लाते ये पद्मपाद की ओर भागने लगे। (अभी और है)





क्या भेद है ?



विक्रम फिर पेड़ के पास गया। शब को उतार कर, कन्धे पर डाल चुपचाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शब में स्थित बेताल ने कहा-"राजा, तुम आधी रात को इतनी मेहनत कर रहे हो। पर किसको क्या मालूम है कि तुम्हारे मन में क्या है! पहले मैत्रेय महामुनि के प्रभाव से धर्म के मन के भाव जिस तरह प्रकट हो गये थे, ठीक उसी तरह तुम्हारे मन के भाव भी प्रकट कर दिये जायें, तो क्या होगा! शायद तुम धर्म की कहानी नहीं जानते हो। सुनाता हूँ, सुनो।" उसने यो कहानी सुनाई।

अयोध्या नगर के पास, मैत्रेय नाम के एक महामुनि घोर तपस्या किया करते थे। अपने योग के बल से वे अपनी सभी चित

बृत्तियों का संयम कर सौ वर्ष तक निश्चल समाधि में रहे। इस तपस्या के कारण उनका सारा शरीर पेड़ की तरह हो गया। यहाँ तक कि उनके सिर पर पक्षियों ने घोंसले भी बना लिये।

मैत्रेय महामुनि की ख्याति देश-विदेश में फैली। उनको देखने के लिए हमेशा यात्री आया करते। उनकी पूजा-सी होने लगी।

अयोध्या में भी एक सज्जन रहा करते थे। उनका नाम था धर्म। वे अपने नाम के अनुरूप थे। वे अमीर थे। पर वे अपनी सुख-सुविधा के लिए पैसा न खर्चते। दूसरों की सहायता के लिए, अपने धन का उपयोग करते। उस प्रान्त में ऐसा कोई न था, जिसने उनसे मदद न पाई हो। गरीब लोग उनका नाम स्मरण करके प्रणाम किया करते। वे भी बहुत प्रसिद्ध थे।

उनके व्यवहार में कभी कोई कमी न देखी गई। दूसरों को दान-दक्षिणा देने में भी वे हमेशा असाधारण बुद्धिमत्ता दिखाते।

धर्म की पत्नी चुड़ैल थी। बदसूरत थी। तो भी धर्म अपनी पत्नी पर कभी नाराज न होते।



वे बड़े कवि थे। लोग उनकी कविता की प्रशंसा करते, वे भी औरों की कविता की प्रशंसा करते। उनका यह प्रयत्न रहता कि उनमें कोई कमी न हो। यदि वे दूसरों में कोई भी अच्छाई देखते तो उसे देखकर सन्तुष्ट होते। यह उनका स्वभाव हो गया था। वे बहुत ही सहृदय समझे जाते थे।

धर्म को हर कोई कलियुग का "धर्मराज" कहकर पुकारता। जो यात्री मैत्रेय से मिलने आते, वे धर्म से भी मिलते। उनसे बातचीत करके अपने धर्म सन्देहों का निवारण करते। उनसे प्रभावित हो खुशी खुशी चले जाते।

एक दिन कुछ यात्री, अयोध्या नगर में धर्म के दर्शन कर, मैत्रेय महामुनि को देखने गये। मैत्रेय महामुनि सदा की तरह समाधि में ध्यानस्थ थे।

उनको देखकर, प्रणाम करके, यात्री आपस में यों बातें करने लगे। तपस्या करके मोक्ष पाना कोई ऐसी आश्चर्य की बात नहीं है। धर्म की तरह सांसारिक कार्य करते हुए, मोक्ष का अधिकारी होना, सचमुच बहुत बड़ी बात है।" एक ने कहा।





"इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस कलियुग में धर्म की बराबरी करने वाला कभी न पैदा होगा। एक बार उनके दर्शन करने मात्र से सब पाप दूर हो जाते हैं।" एक और ने कहा।

ये बातें मैत्रेय महामुनि के कानों में भी पड़ीं। वे अपनी बढ़ी दाढ़ी की आड़ में एक बार मुस्कराये। "मूर्ख ऊपर का आडम्बर देख कर धोखे में आ जाते हैं। यौगिक शक्ति से जिन्होंने मन को काबू में कर लिया हो, क्या ऐसे योगियों से यह धर्म बड़ा है? दुनियाँ यह नहीं जानती कि इसके मन में क्या क्या विचार उठ रहे हैं। उस सब को दुनियाँ से छुपा कर, सिर्फ सदाचार के आधार पर ही यह मुक्ति का अधिकारी है? मैं अपनी तपस्या के बल से, उनके मन के विचारों को, जैसे जैसे वे उठते जायेंगे, कल से, वैसे वैसे व्यक्त करता जाऊँगा।" महामुनि ने तुरत निश्चय किया।

एक दिन बीत गया। अगले दिन धर्म सवेरे सवेरे नींद से उठे। सूर्योदय तक सोने की आदत उनकी कभी न थी। उनकी पत्नी जरूर बहुत देर करके उठती थी। आलसी थी।

नींद से उठकर, धर्म पत्नी की ओर देखकर, जरा झुँझलाया। यह रोज पशु की तरह इतनी देर सोती रहती है। इससे अच्छा तो यह हो कि यह इस मकान से गिर कर मर जाये।" धर्म ने सोचा। धर्म को स्वयं स्पष्ट न मालूम था कि वे मन मैं क्यों इस प्रकार सोच रहे थे। पर इतने में उनकी पत्नी इस तरह उठी जैसे किसी ने पीटकर उठाया हो, और भाग कर छत से नीचे कूदी। धर्म जब हैरान हो नीचे

गये तो वह ठण्डी हो चुकी थी। यह मर चुकी थी।

धर्म को बहुत शोक हुआ। वे यह न जान सके कि उनकी पत्नी ने क्यों यों आत्म-हत्या की थी। वे शब बाहकों को बुलाने के लिए गली में गये। रोज की तरह, उनको गली में देखते ही भिखारी "बाबू, मालिक" कहते उनके चारों ओर मक्खियों की तरह मँडराने लगे।

"मरे ये भिखारी! लाख दो, तो भी तसल्ली नहीं होती।" धर्म ने अपने मन में सोचा। तुरन्त जो जो भिखारी जहाँ खड़ा था, वहाँ खड़ा खड़ा मर गया। गली में लाशों का ढेर लग गया।

यह देख धर्म पबरा गये। सवेरे से उन्होंने दो आश्चर्यजनक घटनाएँ देखी थीं। दोनों का कारण वे न जानते थे। उन्हें इस बात का अफसोस रहा कि दान देने से पहले वे सब भिखारी मर गये थे।

थोड़ी दूर जाने पर, उन्हें धान की गाड़ियाँ, भुस से भरी गाड़ियाँ सामने



से आती हुई दिखाई दीं। जब तक वे चली न गई, तब तक वे आगे न जा सके। इतने में उन गाड़ियों के टुकड़े टुकड़े हो गये और बैल भी इस तरह गिर गये, जैसे किसी ने छुरा भोंक कर उन्हें मार दिया हो।

अब धर्म को मालूम हुआ कि जो जो विचार उनके मन में उठते जाते थे, वे गुजरते जाते थे। उन्हें सन्देह हुआ कि अपनी पत्नी, और भिखारियों की मृत्यु के कारण वे ही थे। इस सन्देह के कारण उन्हें बड़ा दुख हुआ। पर जो होना था सो हो चुका था। अब किया क्या जाय?

उन्होंने बहुत कोशिश की, पर बावजूद उनकी कोशिश के उनके मन में अगर कोई बात उठती तो और यह तुरन्त घट भी जाती।

धर्म ने शाम तक पत्नी की अन्त्येष्टि किया समाप्त कर दी। पुनः शान्ति के लिए, वे राजा के दरबार में गए। धर्म जानते थे कि उस दिन वहाँ काव्य-पठन हो रहा था।

भरे दरबार में, एक कवि, अपना कोई नवीन काव्य सुना रहा था। दरबार पण्डित और कवियों से खचाखच भरा था। धर्म भी एक कोने में कुछ जगह निकालकर बैठ गये। काव्य काफी उत्कृष्ट था। कवि के हर श्लोक पर, श्रोता वाद वाह कर रहे थे। धर्म की रचनाओं की भी इन्ही श्रोताओं ने प्रशंसा की थी। पर धर्म को ऐसा लगा कि वे इस कवि की अधिक प्रशंसा कर रहे थे।

तुरन्त अनजाने ही उनके मन में कोई विचार उठा। देखते देखते काव्य पठन करनेवाला कवि, खून उगलता उगलता मर गया।



दरबार में कोहराम सा मच गया। इस घटना पर आश्चर्य करते करते, श्रोता, अपने अपने रास्ते चले गए।

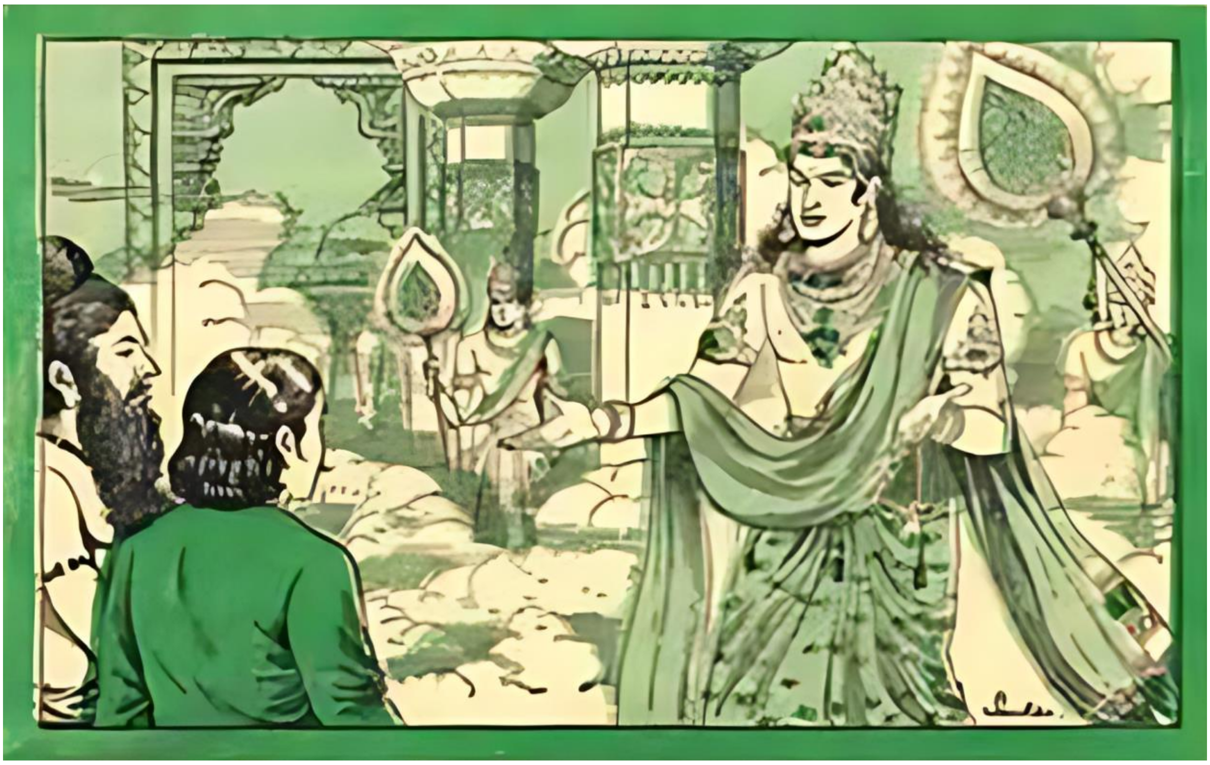
धर्म भी अपने पर गये। वे जानते थे कि कवि की मृत्यु के भी वे ही कारण थे। उन्हें इसका अफसोस था।

"जितनी दारुण हत्याएँ दुष्ट से दुष्ट राक्षस अपनी जिन्दगी में नहीं कर पाता मैने एक दिन में कर दी हैं। मेरा जन्म व्यर्थ है। मेरा सदाचार व्यर्थ है।" यह सोच धर्म ने छुरी भोक कर आत्म-हत्या कर ली।

धर्म का प्राण छोड़ना था कि मैत्रेय महामुनि ने भी सिद्धि प्राप्त कर ली। दोनों को, देवता विमान में वहाँ से स्वर्ग ले गये।

देवलोक में इन्द्र ने दोनों का खूब सत्कार किया। पर धर्म के प्रति विशेष आदर दिखाते हुए इन्द्र ने कहा-"महात्मा! आपके आने के कारण हमारा स्वर्ग पवित्र हो गया है। आप मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये, तब मैं आपको मोक्ष दे दूँगा।"

मैत्रेय महामुनि ने आश्चर्य से पूछा-"क्यों देवेन्द्र! मेरे साथ क्या धर्म भी मोक्ष जा रहा है?"



"हाँ, महामुनि। मोक्ष के आप जितने अधिकारी हैं, उतने ही वे हैं।" इन्द्र ने उत्तर दिया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा- "क्या तुम जानते हो, मैत्रेय महामुनि और धर्म में क्या भेद था? दोनों को मोक्ष का अधिकारी बताने में क्या इन्द्र ने पक्षपात नहीं किया? मन को संयत करनेवाले, मैत्रेय और मन का संयम न रखनेवाले धर्म में क्या समानता है? अगर तुमने जानबूझकर इन प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

"देवेन्द्र ने कोई पक्षपात नहीं किया। सचमुच मैत्रेय महामुनि, और धर्म समान रूप से मोक्ष के अधिकारी थे। धर्म साधारण मनुष्य थे। वे दूसरों के लिए आदर्शप्राय थे। उन्होंने मैत्रेय की तरह अपने सहज स्वभाव को तपस्या के द्वारा खतम नहीं किया था। उस स्वभाव को, अपने सदाचार द्वारा संयत कर दूसरों का उन्होंने कल्याण किया। अगर अन्त में उनके कारण दूसरों की हानि हुई तो इसका कारण मैत्रेय महामुनि का प्रभाव ही था। धर्म का स्वभाव नहीं। इस संसार में यदि सब धर्म के समान हो, तो सब का कल्याण होगा। सब की वृद्धि होगी। यदि हर कोई मैत्रेय महामुनि की तरह होता, तो दुनियाँ कभी की डूब चुकी होती- क्योंकि उन्होंने मानव स्वभाव को ही नष्ट कर दिया था। मैत्रेय महामुनि ने यदि कर्मातीत होकर मोक्ष पाया, तो धर्म ने फर्म द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। इन दोनों में यही मुख्य भेद है।" विक्रमार्क ने निर्भीक होकर कहा।

राजा का इस प्रकार मौन भङ्ग होते ही, बेताल सब के साथ, फिर पेड़ पर जा बैठा।





किसी जमाने में धर्मपुर का राजा दुर्जय था। यह साल में एक बार अपने सामन्तों को बुलाता, और तीन दिन तक जलसे करता, दावतें देता, मनोरञ्जन करता।

एक साल ये जलसे शुरु हुए। दुर्जय और उसके सामन्त दावत खा रहे थे। सब अपनी अपनी शेखियाँ मार रहे थे। कई अपने किलों के खुफिया दरवाज़ों के, कई अपने घोड़ों के बारे में, और कई अपने बगीचों के फलों के बारे में, बातें कर रहे थे। जितने मुँह उतनी बातें।

परन्तु विजय नाम का एक नवयुवक बिना मुख खोले पत्थर की तरह बैठा रहा। दुर्जय ने यह देखकर उससे पूछा-"जब सब अपनी अपनी बखान रहे हैं, तो तुम क्यों चुप बैठे हो? क्या तुम्हारे पास कहने के लिये कुछ नहीं है?"

"अगर..... मुझे कुछ कहना ही है, तो मुझे अपनी पत्नी मालिनी के बारे में ही कहना होगा, वह कहना यहाँ अनुचित होगा। इसीलिये चुप बैठा हूँ, महाराज।" विजय ने कहा।

"बताओ, तुम्हारी पत्नी में भी ऐसी कौन-सी विशेष बात है। जरा हम भी सुनकर प्रसन्न हों। क्या वह बहुत सुन्दर है? नहीं तो क्या वह सङ्गीत में बहुत प्रवीण है? नहीं तो क्या पुष्पों के अलङ्कार में दक्ष है? आखिर उसमें क्या विशेषता है?" दुर्जय ने पूछा।

"महाराज! मेरी पत्नी में वे सब खूबियाँ हैं, जो आपने बताई है। पर इन खुबियों से बढ़कर उसमें एक और विशेषता है, और वह है उसका पराक्रम। तलवार चहाने में, बाण चलाने में, गदायुद्ध में,

श्री रामनाथ मेहरा



उसका मुकाबला करनेवाला कोई नहीं है।" विजय ने कहा।

"तुम इतने योद्धाओं के बीच अपनी स्त्री के बारे में यह कह रहे हो, जरा सोचकर बात करो।"

"महाराज! इन सामन्तों की बात तो दूर की है। आप भी मेरी पत्नी के सामने नहीं टिक सकते। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। मैं सच कह रहा हूँ।" विजय ने कहा।

दुर्जय को गुस्सा आ गया। उसने अपने सिपाहियों को बुलाकर कहा- " इस दुष्ट को ले जाकर तुरन्त तहखाने में डाल दो। जौ की रोटी खाने को दो। बस, इसके लिए यही ठीक सजा है। "

विजय करता तो क्या करता? वह तहखाने में बैठा बैठा सोचने लगा कि उसका छुटकारा कैसे होगा?

इस बीच, किले में उसकी पत्नी, मालिनी, अपने पति की प्रतीक्षा कर रही थी। जब तीन दिन के बाद भी उसका पति वापस न आया, तो उसने अपने पति का समाचार जानने के लिए नौकर भेजे। उन्होंने आकर बताया कि महाराजा ने उसके पति को कैद कर लिया था।

तुरन्त मालिनी ने अपना घोड़ा तैयार करवाया। कवच पहना। तलवार, गदा, धनुष-बाण, तरकश आदि ली। अपने साथ सौ सिपाहियों को लेकर वह धर्मपुर गई। नगर के बाहर उन्होंने डेरा डाला। फिर वह अकेली, दुर्जय महाराजा से मिलने गई।

पुरुष के वेश में, युद्ध के लिए सन्नद्ध मालिनी को देखकर, राजा हैरान रह गया। मालिनी ने सीना तानकर कहा-"मैं कलिङ्ग के राजा का दूत हूँ। आपके

पास से दस लाख अशर्फियाँ ले आने के लिए मुझे भेजा गया है। अगर आप यह न देंगे तो हम युद्ध के लिए तैयार होकर आये हैं। हमारी चालीस हजार सेना, आपके नगर को घेरे खड़ी है। आप दस लाख अशर्फियाँ देते हैं या युद्ध करते हैं? तुरन्त बताइये।"

यह सुनते ही दुर्जय के मानों हाथ-पैर ठण्डे पड़ गये। कलिङ्ग के राजा से रार मोल लेना अकलमन्दी का काम न था। अगर वह दस लाख अशर्फियाँ देना भी चाहता तो उसके पास उतनी अशर्फियाँ न थीं। अगर युद्ध करने की ठानता, तो चालीस हजार सैनिकों का मुकाबला करने के लिए उसको सेना एकत्रित करनी होगी। इसके लिए सब सामन्तों के पास खबर भेजनी होगी।

"मैं तुरन्त उत्तर नहीं दे सकता। मुझे तीन दिन का समय चाहिये।" दुर्जय ने कहा।

"अगर एक बात आप मान गये, तो मैं आपको तीन दिन का समय दे सकता हूँ। आप अपनी लड़की का



मेरे साथ विवाह कीजिये।" मालिनी ने कहा।

दुर्जय भौंचक्का रह गया। "उसके लिए भी एक दिन का समय चाहिए। मुझे अपनी लड़की की राय भी मालूम करनी होगी।" उसने कहा।

"अच्छा, तो यही सही। कल तक, आप अपनी लड़की का विवाह मुझसे कर दीजिये और दो दिनों में दस लाख अशर्फियाँ दीजिये। अगर ये दोनों बातें न हुई, तो युद्ध होकर रहेगा।" मालिनी ने कहा।

दुर्जय ने अपनी लड़की से दूत की इच्छा के बारे में कहा। राजकुमारी ने

झुँझलाकार कहा-"छी! मैं उस हिजड़े से शादी नहीं करूँगी। उसके हाव-भाव चाल ढाल देखकर तो मुझे ऐसा मालूम होता है कि यह स्त्री है। तुम क्यों इतने डर रहे हो, मैं नहीं समझ पाती।"

लड़की के यह कहने पर दुर्जय का हौसला कुछ बढ़ा। उस दिन शाम को, कलिङ्ग के दूत को बुलाकर उसके साथ उसने जुआ खेला। जुए में हर बार दुर्जय की ही हार हुई।

फिर वे दोनों घोड़ों पर सवार होकर, बाग-बगीचे में घूमने गये।

"अस्त्र-विद्या में मेरी आपसे मुकाबला करने की इच्छा हो रही है। जैसा मैं कहूँ, आप वैसा करवाइये।" मालिनी ने कहा। उसने एक जगह एक तलवार गढ़वा दी। उसके सामने एक सोने का पहिया लटकवा दिया। "हम यहाँ से बाण छोड़ें। बाण उस पहिये में से होकर, तलवार को लगना चाहिये, और दो टुकड़े हो जाने चाहिये।" उसने कहा।

दुर्जय ने एक के बाद एक कर के तीन बाण छोड़े। एक भी पहिये में से न गया। "मैं छोड़ता हूँ, देखिये।" उसने



धनुष के धागे को एक दो बार बजाया। तरकश से एक अच्छा बाण निकाला। धागे को कान तक खींच कर छोड़ दिया। यह बाण पहिये में से गया और तलवार से लगकर दो टुकड़े हो गया। जब दोनों को तराजू में रखकर तोला गया, तो उनका भार समान था।

दुर्जय को यह सब देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने रात को अपनी लड़की से कहा-"तुम्हें उस दूत से शादी करनी ही होगी। वह क्या हिजड़ा है? यह बड़ा योद्धा है। उसके शतरञ्ज के दाँव-पेंच से मालूम हो जाता है कि यह युद्ध की विद्या में भी पारङ्गत है। तुम मेरी बात को न ठुकराओ।" कहकर उसने राजकुमारी को दुल्हन बनाने का हुक्म दिया।

अगले दिन मालिनी ने राजा से पूछा- "महाराज! आपने सोच लिया है न? क्या आप अपनी लड़की की मेरे साथ शादी करेंगे कि नहीं?"

"उसके लिए सब आवश्यक व्यवस्था की जा रही है।" राजा ने कहा।

मालिनी ने मन ही मन हँसकर कहा-"तो मैं दस लाख अशर्फियाँ देने के लिए



कल तक समय देता हूँ। इस बीच मेरे हाथ की खुजली मिटाने के लिए, कोई मेरे साथ तलवार या गदा चलायेगा?" यह कहते हुए, उसने अपनी लोहे की गदा उछालकर और उसे एक हाथ में पकड़ लिया।

दुर्जय यह देखकर पसीना पसीना हो रहा था।

"युद्ध प्रवर! इस राज्य में आपका कोई मुकाबला नहीं कर सकता। मैं तो वृद्ध हूँ।" दुर्जय ने कहा।

"आपके राज्य में नवयुवक ही नहीं है! आपके कैदखाने में भी साहसी नहीं हैं? कोई भी हो, मेरे साथ युद्ध करने के लिए तैयार कीजिये।" मालिनी ने कहा।

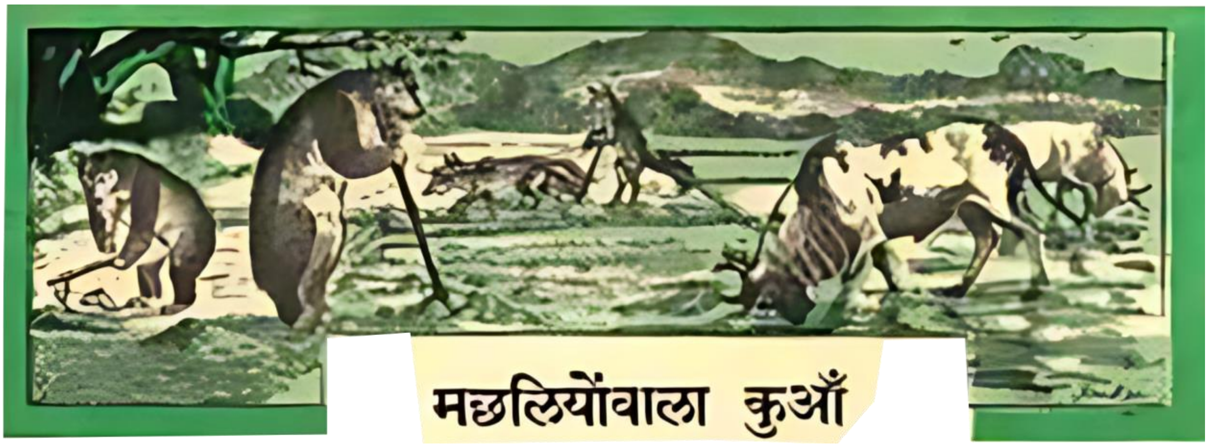
तुरत, दुर्जय को विजय की याद आई। उसने अपने सैनिकों को बुलाकर हुक्म दिया-"तहखाने में से विजय को छुड़ाकर लाओ।"

शीघ्र ही विजय आया। उसको देखते ही, मालिनी ने अपने अस्त्र, शस्त्र, कवच, शिरस्त्राण उतार दिये। स्त्री का वेश पहन कर उसने दण्डवत प्रणाम किया।

यह देखकर दुर्जय को बहुत आश्चर्य हुआ। विजय ने अपनी पत्नी को उठाया। दुर्जय के समक्ष उसे ले जाकर उसने कहा-"महाराज! यह मेरी पत्नी मालिनी है। मैंने इसके बारे में कोई अतिशयोक्ति न कही होगी। यह अब आपको विश्वास हो गया होगा।"

"कितनी साहसी, कितनी पराक्रमी हैं ये।" दुर्जय ने उसकी प्रशंसा की। उसने उन दोनों को कुछ दिन अपने महल में, अतिथि रखकर आदर-सत्कार कर सादर विदा किया।





जङ्गल में जन्तुओं ने निश्चय किया कि वे हल जोतकर खेती करेंगे और जन्तुओं के साथ लोमड़ी और खरगोश भी खुरपा, फावड़ा लेकर खेत में जोर-शोर से काम करने लगे।

सूर्य धीमे धीमे ऊपर चढ़ रहा था। सिर जल रहा था। खरगोश थक थका गया था। पर उसे डर था कि अगर कहीं वह सुस्ताने लगा तो और जन्तु उसे आलसी कहेंगे। इसलिए कमर कसकर वह काम करता रहा, यद्यपि काम में उसका मन न लग रहा था।

परन्तु खरगोश का दम निकल-सा गया था। अगर कहीं पेड़ के नीचे आराम न करता तो शायद यह मर जाता। उसने बहाना किया, जैसे हाथ में काँटा घुस गया हो। वह एक तरफ हट गया। फिर पेड़ों के पीछे से उसने नजर बचाकर एक दौड़ लगायी। वह भागा भागा भाग के कुएँ के पास गया।

यह कुआँ पेड़ की साया में था। उस पर एक चरखी थी। उस पर रस्सी, रस्सी के दोनों और दो बाल्टियाँ थीं। कुएँ और छाया को देखकर, खरगोश के प्राण में प्राण आये। वह एक छलाङ्ग में जाकर बाल्टी में कूदा। वह तुरन्त, खरगोश के भार से नीचे जाने लगी। खरगोश को डर लगा। पर वह चुप बैठा रहा, चाहे कुछ भी हो। पानी छूते ही बाल्टी रुक गई। अगर खरगोश छटपटाता या हाथ पैर मारता, तो शायद वह कुएँ में जाता और मर मरा जाता। खरगोश पर लोमड़ी नज़र लगाये हुई थी। ज्योंही खरगोश काँटा चुभने के बहाने से गया कि नहीं, लोमड़ी

श्री सुमन कुमार जोशी

भी उसके पीछे पीछे खिसक गयी। खरगोश का बाल्टी में कूदना और बाल्टी का कुएँ में गिरना उसने दूर से देखा। मगर खरगोश यह नहीं जानता था।

"वह खरगोश बिना काम के इतनी देर कुएँ में न बैठेगा। कहीं इसके अन्दर सोना तो नहीं छुपा हुआ है?" सोचते हुए लोमड़ी धीमे धीमे कुएँ के पास गई। और उसने अन्दर झांककर देखा। क्योंकि कुँआ गहरा था, इसलिये उसे साफ कुछ न दिखाई दिया।

"खरगोश भाई !" लोमड़ी ने पुकारा।

"कौन है वहाँ? लोमड़ी?" अन्दर से खरगोश चिल्लाया।

"वहाँ क्या कर रहे हो?" लोमड़ी ने पूछा।

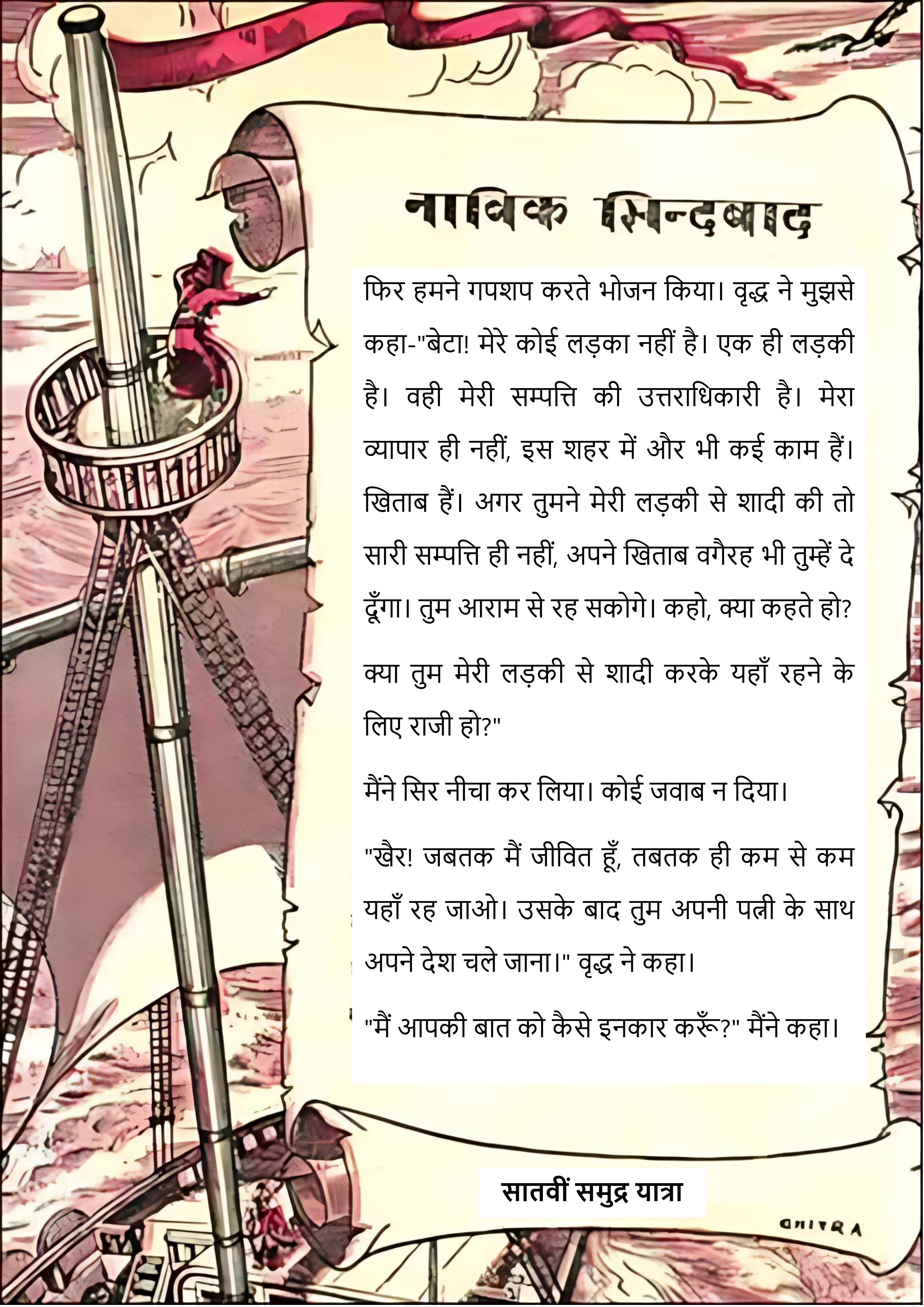
"मछलियाँ पकड़ रहा हूँ। मछलियों के झुण्ड के झुण्ड हैं। चाहो तो तुम भी उस बाल्टी में चढ़कर जा जाओ। फिर कभी ऐसा मौका न मिलेगा।" खरगोश ने चिल्लाकर कहा।

ऊपर की बाल्टी में लोमड़ी कूदी। क्योंकि लोमड़ी, खरगोश से भारी होती है, इसलिए खरगोश की बाल्टी ऊपर आने लगी और लोमड़ी की धीमे धीमे नीचे जाने लगी।

जब रास्ते में दोनों बाल्टियों मिलीं तो खरगोश ने लोमड़ी से कहा-"तुम मछलियाँ पकड़ती रहो, मैं अभी आया। क्यों? समझे?"

जल्दी ही खरगोश ऊपर चला आया। और बाहर कूदकर घर की ओर जाने लगा। काम खतम करके, जब तक दूसरे जन्तु, कुएँ के पास पानी पीने न गये, तब तक बिचारी लोमड़ी कुएँ में ही पड़ी रही।





नाविक सिन्दबाद

फिर हमने गपशप करते भोजन किया। वृद्ध ने मुझसे कहा-"बेटा! मेरे कोई लड़का नहीं है। एक ही लड़की है। वही मेरी सम्पत्ति की उत्तराधिकारी है। मेरा व्यापार ही नहीं, इस शहर में और भी कई काम हैं। खिताब हैं। अगर तुमने मेरी लड़की से शादी की तो सारी सम्पत्ति ही नहीं, अपने खिताब वगैरह भी तुम्हें दे दूँगा। तुम आराम से रह सकोगे। कहो, क्या कहते हो?

क्या तुम मेरी लड़की से शादी करके यहाँ रहने के लिए राजी हो?"

मैंने सिर नीचा कर लिया। कोई जवाब न दिया।

"खैर! जबतक मैं जीवित हूँ, तबतक ही कम से कम यहाँ रह जाओ। उसके बाद तुम अपनी पत्नी के साथ अपने देश चले जाना।" वृद्ध ने कहा।

"मैं आपकी बात को कैसे इनकार करूँ?" मैंने कहा।

वृद्ध ने तुरन्त काजी को बुलाया। मेरा अपनी लड़की के साथ विवाह कर दिया। बड़ी दावत दी गई। तभी मैंने अपनी स्त्री को पहली बार देखा। वह सुन्दर ही न थी, हजारों दीनारों की क़ीमती गहने पहने हुए थी। हम दोनों बहुत दिनों तक प्रेम से जिन्दगी बिताते रहे। आखिर मेरे ससुर मर गए। मैंने अन्त्येष्टि संस्कार करवाया। उनकी सम्पत्ति और गुलाम सौरह मेरे हाथ में आये। नगर के व्यापारी, मुझे ही ससुर की जगह मुखिया समझने लगे। इसलिए वहाँ के रीति-रिवाजों का मुझे पालन करना पड़ा।

वसन्त ऋतु में हर वर्ष एक विचित्र घटना हुआ करती थी। यह मुझे मालूम हुआ कि एक दिन के लिए, यहाँ के लोगों के पर लग जाते थे। वे उनकी मदद से आकाश में उड़ जाते थे, और जब तक पर रहते वापिस न आते। वे पर स्त्रियों और बच्चों को न लगते थे। इसलिए वे नगर में ही रह जाते थे। पहले तो यह सुनकर मुझे अचरज हुआ। पर बाद में यह आदत-सी हो गयी। किन्तु बाद में मैंने देखा कि



उस शहर में मैं ही अकेला था, जिसके पर न लगते थे। जब और आकाश में उड़ रहे होते तो स्त्री और बच्चों के साथ मुझे नगर में ही रहना पड़ता। यह देख मैं शर्मिन्दा होता। मैने कईयों से पूछा कि पर कैसे लगते हैं, पर किसी ने न बताया। या तो वे बताना न चाहते थे, नहीं तो वे जानते ही न थे। परन्तु मेरे लिए यह चिन्ता का कारण बन गया।

उस नगर में एक व्यापारी रहा करता था। कई तरह से उस पर मेरा एहसान था। एक बार मैने उससे कहा-"इस तरह जब तुम उड़ रहे होगे, तो मैं तुमसे लिपट जाऊँगा, मुझे भी ऊपर उड़ा ले जाना। कई बार समुद्र में यात्रा की है, पर कभी हवा में नहीं उड़ा हूँ। तुम्हें जरूर इस बारे में मेरी मदद करनी होगी।" पहले तो वह न माना, पर बाद में वह मान गया। मैंने यह बात अपनी पत्नी से कही। जब वह उड़ने लगा, तो मैंने उसको पकड़ लिया। हम दोनों हवा में उड़े।

हम सीधे आकाश में चले गये। थोड़ी देर बाद मुझे ऐसा लगा, जैसे स्वर्ग के पास पहुँच गये हैं और गन्धर्व गान सुनायी





पड़ रहा है। मैंने कहा- "अल्लाह, तेरा भी क्या करिश्मा है।" यह बात मेरे मुख से निकली थी कि व्यापारी और मैं पत्थर

की तरह नीचे गिरने लगे। मुझे डर लगा कि हम दोनों नीचे गिरते ही चकनाचूर हो जायेंगे। परन्तु सौभाग्य से, हम दोनों एक पहाड़ की चोटी पर उतरे। परवाले व्यापारी ने एक बार मुझे घूरकर देखा। मुझे वहाँ छोड़कर वह कहीं और उड़ गया। मैं एक पत्थर पर बैठकर सोचने लगा- "सचमुच मेरी ज़िन्दगी भी क्या है! एक आफत जाती भी नहीं कि दूसरी आ पड़ती है। मैं इस आपदा से बाहर निकलने की सोच रहा था कि दो सुन्दर लड़के मेरी तरफ आये। उनके हाथों में सोने को छड़ियाँ थीं।

मैंने झट उनके पास आकर पूछा- "बेटा! तुम्हारा खुदा भला करेंगे। तुम कौन हो? यहाँ क्या कर रहे हो?"

उनमें से एक ने सोने की छड़ी मेरे हाथ में देकर एक अंगुली दिखाकर दूसरे के हाथ से हाथ मिलाकर, वह कहीं चला गया।

उनके जाते ही, मैं उस तरफ चलने लगा, जिस तरफ उसने इशारा किया था। एक पत्थर का चक्कर काटकर गया था कि मुझे एक बड़ा साँप दिखाई दिया। उसने तब एक आदमी को कमर तक निगल रखा था। वह आदमी मुझे देखकर चिल्लाया- "बचाओ, बाबू! बचाओ!" मैंने पीछे से जाकर, उस साँप के सिर पर सोने की छड़ी मारी। वह साँप मर गया। मैंने उसके मुख से उस आदमी को बाहर निकाल दिया।

जब ध्यान से देखा तो वह आदमी वही था, जो मुझे आकाश में उड़ा ले गया

था। "क्यों भाई? एक दोस्त से क्या ऐसा ही सलूक किया जाता है?" मैंने पूछा।

आपने मेरी जान बचाई है। मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। पर मैं आपको एक बात बताना चाहता हूँ। आकाश से गिरने का कारण, आपने जो नाम लिया है, वही है। हम यह नाम कभी याद नहीं करते। जब यह हमारे कानों में पड़ता है, तो हमारी सब शक्तियों चली जाती है।" उस आदमी ने कहा।

"वह मैं न जानता था। तुम्हारा भला होगा, मुझे घर पहुँचा दो। मैं फिर वह नाम न लूँगा।" वह मुझे अपनी पीठ पर चढ़ाकर एक क्षण में मेरे मकान की छत पर छोड़ गया।

मेरी पत्नी मुझे देखकर बड़ी खुश हुई। "हमारा इन लोगों के बीच रहना अच्छा नहीं है। ये सब पिशाच की सन्तान हैं।"

उसने कहा। क्योंकि वे अल्लाह का नाम भी न सुन सकते थे। इसलिए मैंने अनुमान किया कि उसका कहना ठीक ही था। मैंने पूछा-"तो तुम्हारे पिता भी इन्हीं लोगों में से थे क्या?"



"नहीं, मेरे पिता, इनमें नहीं थे। इनके रीति-रिवाजों का उन्होंने कभी पालन नहीं किया। ये जो करते हैं, उन्होंने कभी नहीं किया। क्योंकि वे अब यहाँ नहीं हैं, इसलिए इस वाहियात शहर में हमारे रहने की जरूरत नहीं है। घर बगैरह बेचकर आओ, हम चले जायें।" मेरी पत्नी ने कहा।

मेरी पत्नी चाहती थी कि जमीन-जायदाद को अच्छे दाम पर बेचकर, बगदाद जाकर हमारे वधुवान्धवों के साथ रहे। मैने अपने व्यापारिक अनुभव, समझ-बूझ के

बूते पर अपने ससुर की सम्पति को खूब फायदे के साथ बेचा। उस धन से मैने एक जहाज और व्यापार के लिए खूब माल खरीदा। जहाज में मैं और मेरी पत्नी चढ़कर जगह जगह चीजें बेचते, खरीदते, मुनाफा उठाते बसरा पहुँचे। वहाँ से हम बग़दाद गये।

मैं, अपनी पत्नी के साथ घर गया। हमें देखकर सब बड़े आनन्दित हुए। मैंने अपनी सब चीजें ठीक कीं, दुकानों में कुछ माल बिकवाने के लिए रखवा दिया। फिर बन्धु-मित्रों को मैंने अपने अनुभव सुनाये। मैंने उनके समक्ष शपथ की कि फिर कभी देश छोड़कर न जाऊँगा। उस शपथ को मैंने अब तक नहीं तोड़ा है।

उपसंहार

सिन्दबाद के कहानी सुनाने के बाद, कोई कुछ देर तक कुछ न बोला। उसने बोझ उठानेवाले सिन्दबाद की ओर मुड़कर कहा-"देखा भाई! इस धन को कमाने के लिए मैंने कैसी कैसी मुसीबतें झेली हैं, क्या तकलीफें सही हैं। बोझ उठाकर क्या तुमने मुझसे अच्छा जीवन निर्वाह नहीं किया है? सच बताओ। यह मैं मानता हूँ कि तुम गरीब हो और में रईस हूँ। परन्तु भगवान, हमें, हमारे प्रयत्न के अनुसार ही फल देते हैं।"

बोझ ढोनेवाले सिन्दवाद ने प्रणाम करके कहा-"महाशय! जो गीत मैंने अज्ञान में गाये हैं, उन पर ध्यान नहीं दीजिये!"

नाविक सिन्दबाद महीने भर तक अपने मित्र अतिथियों की जोर-शोर से आवभगत करता रहा। फिर उसने बोझा ढोनेवाले सिन्दवाद को अपनी नौकरी में रख लिया। वे जिन्दगी भर मित्र होकर सुखपूर्वक रहे।

[समाप्त]





मछियारे का भाग्य

बगदाद शहर में एक मछियारा रहा करता था। उन दिनों हसन अल रशीद खलीफा था। मछियारा बड़ा गरीब था। कतई नादान। इसलिये उसको किसी ने शादी में लड़की भी न दी। उसका नाम भी खलीफा था।

एक दिन बहुत सबेरे कन्धे पर जाल डालकर, टिग्रिस नदी में मछली पकड़ने के लिए वह गया। उसने जगह जगह पर जाल फेंका, पर कहीं कोई मछली हाथ में न आई।

नदी के किनारे लेटकर उसने यह कह कर तसल्ली की-"नहीं मालूम अल्लाह किनकी मदद करते हैं। अगर उनकी मेहरवानी न हो तो किसी को खाना भी न मिले।" आखिर उसने सोचा-"एक बार और जाल फेंकता हूँ, मछली फँसेगी तो फँसेगी, नहीं तो नहीं।" घुटने भर पानी में खड़ा होकर, उसने जोर से जाल फेंका। थोड़ी देर बाद उसने जाल धीमे धीमे खींँचा।

इस बार जाल में कुछ फँसा। किनारे पर जाल को सींचकर उसने जो देखा तो उसमें एक लँगडा, काना बन्दर दिखाई दिया। मछियारा को कुछ समय तक तो अचरज हुआ, फिर उसे गुस्सा आया, और बन्दर को मारने लगा।

तब बन्दर ने मनुष्य की भाषा में कहा-"ठहरो खलीफा। मुझे मत मारो। मुझे यहाँ पेड़ से बाँध दो, और फिर एक बार जाल फेंको, तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायेगी।"

मछियारे ने एक बार और जाल फेंका। इस बार भी जाल में बन्दर ही फँसा



यह बन्दर पहले बन्दर से भी अधिक बदसूरत था। उसकी आँखो में काजल लगी थी और पैरों पर मेहन्दी। एक फटा कुर्ता पहन रखा था।

"अल्लाह की करामात है। आज नदी की मछलियाँ बन्दर बन गई हैं।" मछियारे ने सोचा। वह छड़ी लेकर पहले बन्दर की ओर लपका- "अरे दुष्ट! क्या यही तेरी सलाह है? देख, मैं आज तेरी क्या गत बनाता हूँ।" उसने गुस्से में कहा।

"ठहर, खलीफा। जल्दबाजी न करो। मेरा भाई जैसी सलाह दे, वैसा करो। तुम्हारा भला होगा।" पहले बन्दर ने सम्भलकर कहा।

मछियारे ने दूसरे बन्दर की ओर मुड़कर पूछा-"मुझे क्या करने के लिए कहते हो?"

"मुझे यहाँ छोड़कर, एक बार और जाल फेंको।" दूसरे बन्दर ने कहा। मछियारे ने तीसरी बार जाल फेंका। इस बार भी उसके जाल में एक बन्दर दी फँसा। उसके बदन पर लाल लाल बाल थे। उसकी आँखों में काजल थी। पैरों पर मेहन्दी। वह एक नीला कुर्ता पहने हुए था।

"अरे, अल्लाह! भाज तो कोई कयामत आती लगती है। शायद अब इस नदी में बन्दर ही बन्दर होंगे। मछली न होगी।" फिर उसने तीसरे बन्दर की ओर मुड़कर पूछा- "आखिर तुम हो कौन?"

"मैं कौन हूँ, तुम नहीं जानते खलीफा। इस शहर में अबू सादा नाम का यहूदी व्यापारियों का एक मुखिया है। मैं उस व्यापारी का भाग्य हूँ। मेरे कारण वह रोज दस दीनारें कमाता है।" तीसरे बन्दर ने कहा।

मछियारे ने पहले बन्दर को डाँटा। "सवेरे सवेरे तेरी मनहूस शक्ल क्या देखी कि सब अनहोनी हो रही है।"

"तुम उसके पास जाओ! जो मैं कहता हूँ करो। फिर एक बार जाल फेंको, उसमें जो फँसे, मुझे दिखाओ।" तीसरे बन्दर ने कहा।

"अच्छा, जी हुजूर, बन्दरों के बादशाह!" कहते हुए मछियारे ने जाल फेंका। इस बार उसके जाल में एक अद्‌भुत मछली फँसी। उसके सिर सौरह बहुत बड़े थे। उसकी आँखें सोने की सी लगती थी। उसको देखकर तीसरे बन्दर ने यों कहा-"एक टोकरी की तह में घास-फूस रखो। उस पर मछली को रख कर, उसे फिर पास-फूस से फेंक दो। उस टोकरे को लेकर बग़दाद के चौक में जाओ। रास्ते में कोई कुछ पूछे तो कुछ न बोलना। वहाँ अबू सादा की दुकान है। तुम उसके पास जाकर मछली को दिखाना। वह पूछेगा-'क्या इसको किसी और को दिखाया है?' तुम कहना कि 'नहीं दिखाया है।' वह मछली लेकर तुम्हें एक दीनार देने लगेगा। पर तुम



न लेना। दो दीनारें देने की कोशिश करेगा। वे भी न लेना। जब यह यह भी कहे कि वह मछली के वजन के बराबर सोना देगा, तब भी न मानना। तब यह पूछेगा-'आखिर तुझे चाहिये क्या?'

तुम कहना कि 'बस मुझे एक शपथ काफी है।' वह पूछेगा, 'शपथ क्या है?' 'बाबू! आप पाँच-दस आदमियों के सामने शपथ कीजिये-'मैं अपना भाग्य तुम्हें देकर, तेरा भाग्य ले लेता हूँ।' वह यही करेगा। तब मैं तुम्हारा हो जाऊँगा। उसके बाद तुम्हें रोज दस दीनारों

का मुनाफा दिलाना मेरा जिम्मा रहा। समझे खलीफा?"

मछियारा यह सुनकर बड़ा खुश हुआ। उसने तीनों बन्दरों को खोल दिया। वे तुरन्त नदी में कुद गये। फिर बन्दर के कहने के अनुसार, एक टोकरी में पास घास फूस के बीच मछली को रखकर, वह गाता, गुनगुनाता, चौक गया। रास्ते में कई ने कुछ पूछा, पर वह चुप रहा।

अबू सादा मछली देखकर बड़ा खुश हुआ। उसने उस मछली को, नौकर के हाथ अपनी लड़की के पास भिजवाया और मछियारे के हाथ में एक दीनार रखी।

जिन्दगी में खलीफा ने कभी सोने की दीनार देखी न थी, इसलिये दीनार के हाथ में पड़ते ही वह बड़ा खुश हुआ। वह उसे लेकर चलने को ही था कि उसको बन्दर की याद आई। तुरन्त वापिस जाकर उसने दीनार को नीचे फेंकते हुए कहा-"मुझे यह नहीं चाहिये। मेरी मछली वापिस कर दीजिये।"

"अरे यह क्या? क्या लालची हो? चाहते हो तो पाँच दीनारें देता हूँ।



उस मछली की सचमुच इतनी कीमत नहीं है।" अबू सादा ने कहा।

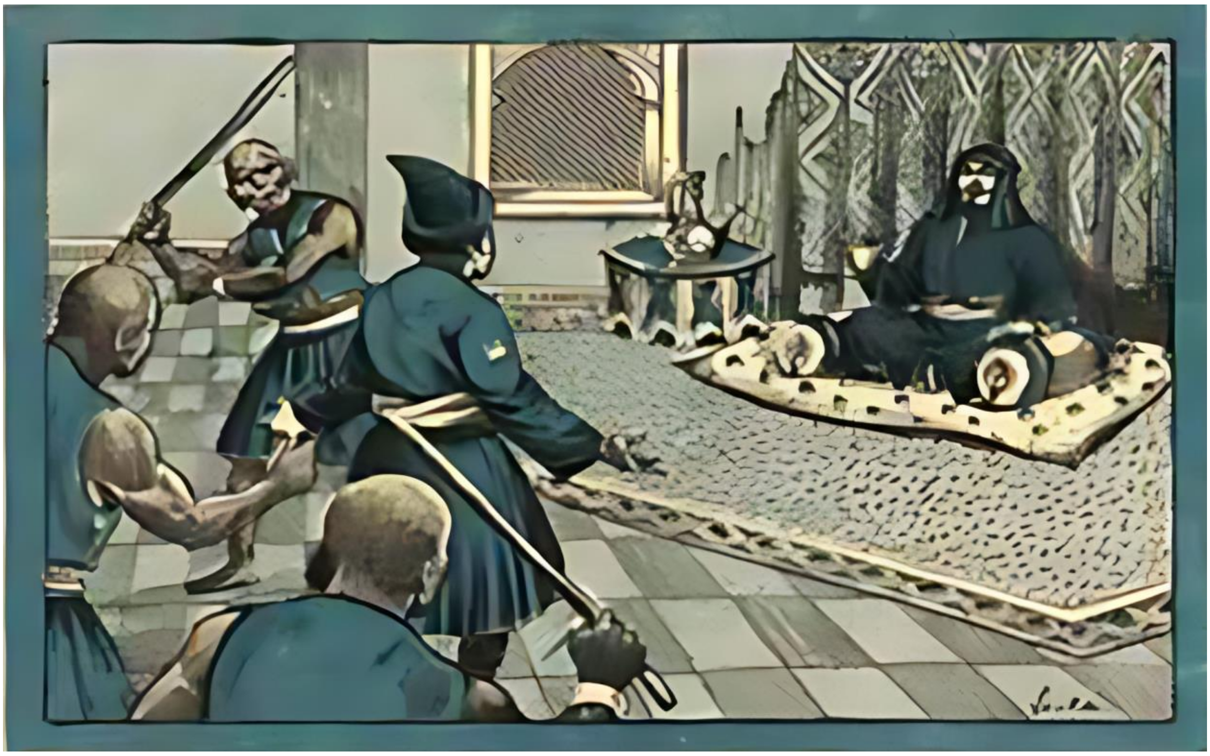
पाँच दीनारें देखकर, खलीफा का सिर चकरा गया। "अरे हाँ भाई, बाग़दाद के खलीफा के पास भी इतना सोना न होगा। मेरी अच्छी किस्मत है।" यह सोचते हुए, वह दीनारें लेकर चला गया। पर कुछ दूर जाने के बाद उसे बन्दरों के बादशाह की सलाह यकायक याद आई।

मछियारा फिर वापिस गया। पाँच दीनारें नीचे फेंकते हुए उसने कहा- "मेरी मछली वापिस कर दीजिये। मुझे दीनारें नहीं चाहिये।"

अबू सादा ने हैरान होकर पूछा- "एक मछली के लिए पाँच दीनारें दे रहा हूँ, और तुम कहते हो कि काफी नहीं है। उसकी कीमत कितनी है?"

"सिर्फ एक शपथ।" मछियारे ने कहा।

वह मछियारा शायद उसे यहूदी मजहब छोड़कर, इस्लाम कबूल करने के लिए कहेगा, यह सोचकर, अबू सादा ने अपने नौकरों से कहा- "इस बेवकूफ की मरम्मत कर दो।"





उन्होंने मछियारे को तब तक पीटा, जब तक उसके मालिक ने उन्हें न रोका। तब मछियारे ने कहा-"इस मछियारे सतीफ़ा को इस मार की कोई परवाह नहीं है।"

अबू सादा ने हँसकर कहा-"मुझे मजहब बदलने के लिए कहा तो पीटूँगा; तुम्हारी जान निकाल दूँगा। जो तुम चाहते हो, अदब से माँगकर ले लो।"

"अगर आप जैसे लोगों ने इस्लाम कबूल भी कर लिया तो किसी का कोई भला न होगा, मेरी सपथ कुछ और है।" मछियारे ने असली बात कही।

"अरे, इस बात के लिए ही इतनी चखचख की क्या जरूरत थी?" अबू सादा ने मछियारे की इच्छानुसार पाँच-दस आदमियों के सामने कसम खाई कि मछियारे को उसकी किस्मत मिले और मछियारे की किस्मत उसे।

मछियारे को तसल्ली हो गयी। वह खाली टोकरी लेकर नदी की ओर भागा। नदी में जाल फेंका। जाल में तरह तरह की मछलियाँ फँसी। उसी समय एक स्त्री उस तरफ से गयी और उसने एक दीनार देकर कुछ मछलियाँ खरीद की। फिर कोई नौकर आया। उसने भी कुछ मछलियाँ खरीदी। इस तरह शाम होने से पहिले मछियारे ने सब मछलियाँ बेच दी और अपनी दस दीनारें बना ली।

दस दिन ठीक ऐसा ही होता रहा। जीवन में कभी उसने इतना पैसा न देखा था। सौ दीनारें देखकर वह फूला न समाया।

उस मछियारे का झोपड़ा, व्यापारियों की गली के अन्त में था।

दूसरे दिन उसने गाँजा पी और उसके नशे में यों सोचने लगा

"सब का यह ख़याल है कि मैं बहुत गरीब हूँ। कोई नहीं जानता कि मेरे पास सौ दीनारें हैं। पर यह बात कितने दिनों तक छुपी रहेगी! कभी न कभी तो मेद खुलेगा ही। यह बात खलीफा तक भी पहुँचेगी। उनका खजाना खाली होते ही वे मेरे पास आकर पूछेंगे-'अरे, सुना है कि तेरे पास सौ दीनारें हैं।' 'मेरे पास भला सोना कहाँ होगा?" मैं कहूँगा, पर उनको मेरी बात पर यकीन न होगा। वे मुझे सिपाहियों से कोड़े लगवायेंगे। अब मुझे कोड़ों को सहने का अभ्यास करना होगा।"

यह सोचकर उसने अपने को कोड़े से पीटना शुरू किया और यह हर चोट पर चिल्लाता-"हुजूर, मेरे पास पैसा नहीं है, यह सब झूठ है।"

कोड़ों की आवाज़ और उसके चिल्लाने के कारण आसपास के लोगों की नींद उचट गयी। उन्होंने सोचा कि मछियारे के घर चोर आये हैं। पर पास जाकर उन्होंने देखा तो



किवाड़ बन्द हैं और अन्दर से चटखनियाँ लगी हैं।

कुछ अड़ोस-पड़ोस के घरों से मछियारे के घर के आँगन में कूद पड़े। उसे अपने आप कोड़े लगाते देख कई ने पूछा-"क्या तेरी अक्ल मारी गई है? क्यों यों अपने को पीट रहा है?"

सचमुच मछियारा नादान था। वह जो बात सब से छुपाना चाहता था, वह सब को मालूम हो गयी। उसने खुद पैसे के बारे में कह दिया। उसकी नादानी पर हँसते हुए उन्होंने कहा-"अरे, यह पैसा तुझे

आराम देने के लिए नहीं आया है?"
वे अपने अपने पर चले गये।

ठीक वैसा ही हुआ। मछियारा जब मछली पकड़ने निकला तो उसे डर लगा कि अगर उसने दीनारें घर में छोड़ दी, तो हो सकता है कि कोई चोरी करके ले जाये। इसलिए उसने अङ्गिया के अन्दर एक जेब सिलवाई, उसमें सौ दीनारें रख कर, छड़ी, जाल, टोकरे लेकर वह नदी पर गया।

उस दिन उसने कई जगह जाल फेंका। पर कहीं कोई मछली न मिली। दोपहर तक वह जाल फेंकता रहा, पर कोई फायदा न हुआ। आखिर वह पानी में घुस गया। जोर लगाकर उसने जाल फेंका। उसने इस झटके के साथ फेंका कि जेब में से सौ दीनारें पानी में गिर पड़ी।

तुरन्त उसने अपने कपड़े उतारे और नदी में कूद गया। उसने बहुत खोज की, पर खोई हुई दीनारें न मिलीं। आखिर, जब थक थकाकर, किनारे पर गया, तो वहाँ कपड़े गायब थे। उन्हें किसी ने ले लिया था। वह पागल सा हो गया।



वह शरीर पर जाल लपेटकर पागल की तरह इधर उधर भागने लगा।

* * * *

बगदाद शहर में इबन अल कीर्नास नाम का एक जौहरी था। वह खलीफा हसन रशीद का विश्वासपात्र मित्र था। यह अफवाह भी कि वह कभी कभी खलीफा को भी कर्ज दिया करता था । बगदाद शहर में अगर कोई जेवर आता, या गुलाम आता, तो अल कीर्नास को पहले पहल दिखाया जाता।

एक दिन जौहरी के पास एक गुलाम लड़की लायी गई। यह लड़की बहुत सुन्दर थी। वह खूब गाती थी, कई बाद्य बजा सकती थी। उसका नाम कुतल कुलब था। उसको जौहरी ने पाँच हजार दीनारें देकर खरीद लिया। उसको एक हजार दीनारों के कीमती गहने पहनाकर वह अपने मित्र खलीफा के पास ले गया और उसने उसको भेंट में दे दिया।

जब से कुतल कुलब उसके पास आई, खलीफा ने न बेगम जुबेदा को देखा, न किसी और पत्नी को ही। वह कई दिन लगातार उसके यहाँ रहता। केवल शुक्रवार को नमाज के लिए मस्जिद जाता।



एक गुलाम लड़की पर खलीफा का पागल होना, बेगमों को न भाता था। बजीरों को यह गँवारा न था कि वे एक गुलाम लड़की के पीछे राज्य के काम की परवाह न करें। बजीरे आजम, जाफर ने खलीफा से नम्रतापूर्वक कहा-"हुजूर का, एक गुलाम लड़की के पीछे पड़कर और काम छोड़ बैठना अच्छा नहीं है। घोड़ो पर सवार होकर, शिकार खेलने गये, अर्सा हो गया है। चलिए चलें।"

"अच्छा तो, चलो चलें आज शिकार खेलने।" खलीफा ने कहा।

शीघ्र ही, कुछ सिपाहियों को साथ लेकर, वे शिकार खेलने निकल गये। गरमी ज्यादा थी। वे शहर से बहुत दूर चले गये। खलीफा को प्यास लगी। पानी के लिए उन्होंने चारों तरफ देखा। उसे एक टीले पर कुछ दिखाई दिया। उन्हें आश्चर्य हुआ।

"वह जो दीख रहा है, क्या है, जानते हो जाफर?" खलीफा ने बजीर से पूछा।

"कोई आदमी जान पड़ता है। हुजूर, शायद कोई माली है। शायद वह हमारी प्यास बुझा सके। क्या मैं वहाँ हो आऊँ?"

"हमारे सिपाही पीछे रह गये हैं। उनके आने तक तुम यहाँ रहो। इस बीच मैं जाकर अपनी प्यास बुझाकर आता हूँ।" खलीफा ने यह कहकर अपना घोड़ा आगे दौड़ाया।

जब यह टीले पर पहुँचा, तो यह बात निश्चित हो गयी कि वह एक आदमी ही था। उसने अपने शरीर पर जाल लपेट रखा था। उसके बाल बिखरे हुए थे। आँखें अङ्गारे हो रही थीं। वह और कोई न था, सिवाय मछियारे खलीफा के।

(अगले अङ्क में समाप्त)





[२]

[ट्रॉय नगर के पतन के बाद, रूपधर और उसके अनुचर घर की ओर निकले। पर तुफान में वे भटक गये और आखिर वे एक द्वीप में पहुँचे। उस द्वीप में रहनेवालों के बारे में जानने के लिए पर बारह सैनिकों के साथ एक गुफा मैं गया। वह गुफा भाल लोचन जाति के एक आदमी की थी।।]

उस राक्षस की आवाज़ सुनकर ग्रीक सैनिकों का दिल दहल उठा।

रूपपर ने साहस करके राक्षस से यों कहा-""महाराज! हम ट्रॉय नगर से वापिस जा रहे हैं। हम ग्रीक हैं। दुर्भाग्य से, प्रतिकूल हवा के कारण हम रास्ते से भटक गये। हमारा महाराजा जगविख्यात हैं। उसने कई देश जीते हैं। ट्रोय नगर को भी विध्वंस कर दिया है। हम आपके अतिथि हैं। और अतिथि देवताओं के समान हैं। इस स्थान पर हम नये हैं। इसलिये आप हमारा आतिथ्य करें, और हर आपत्ति से हमारी रक्षा करें, यही हमारी प्रार्थना है।"

यह सुन राक्षस ने अट्टहास किया और कहा-"अरे मूर्ख! हम देवी- देवताओं की परवाह नहीं करते। जानते



हो, हमारे भाल लोचन के सामने कोई देवता टिक नहीं सकता। तुमने अपने जहाज का लङ्गर कहाँ डाला है? पास या दूर? पहले यह बताओ। जल्दी।"

रूपधर जान गया कि राक्षस ने ये प्रश्न क्यों पूछे थे। उसने कहा-"अब हमारा जहाज कहाँ है? मैं क्या कहूँ? वह इस द्वीप के किनारे के पत्थरो से टकरा कर टुकड़े टुकड़े हो गया है। सिवाय मेरे और मेर इन अनुचरों के सब को यम देवता निगल गया है। कुछ नहीं बचा।"

राक्षस ने कुछ न कहा। उसने फौरन हाथ फैलाकर, दो ग्रीक सैनिकों को पकड़कर, जमीन पर पटक कर मारा और जब उनके प्राण निकल गये तो उनको हड्डियों सहित खा गया। यह रूपधर आदि ने स्वयं अपनी आँखो देखा। उनका अपने प्राणों पर मोह जाता रहा। अगर वह चाहे तो उन्हें भी मार सकता था।

माल लोचन भोजन करके, पाँच छह घड़े कच्चा दूध पीकर अपने भेड़-बकरियों के बीच, सो गया।

रूपधर तलवार निकालकर खड़ा हो गया। उसने सोचा कि राक्षस की छाती को खोज खोजकर उस पर छुरी भोक दी जाये। पर इतने में उसको एक बात बाद आई। वह यह कि गुफा के दरवाजे पर जो पत्थर रखा था, उसे न वह हटा सकता था, न उसके साथी ही और अगर उसने राक्षस को मार दिया, तो वह और उसके साथी, उसी गुफा में भूख और प्यास के कारण तड़प तड़प कर मर जायेंगे और बहुत बुरा हाल हो जाएगा। उनकी कोई मदद भी न कर सकेगा। इसलिये तलवार चुपचाप म्यान

में रखकर, रूपधर अपनी जगह सो गया। उसे, उस रात को नींद न आई। रात भर वह इधर उधर की बहुत-सी बातें सोचता पड़ा रहा।



सबेरा हुआ। राक्षस उठा। आग जलाई। उसने अपनी बकरियों का दूध दुधा। मेमनों को छोड़ दिया। फिर उसने दो ग्रीक सैनिकों को पकड़कर खाया। और अपनी बकरियों को गुफा के बाहर हाँक कर ले गया। पर इस बार उसने गुफा

के द्वार पर पत्थर रख दिया, ताकि ग्रीक भाग न जायें।

राक्षस के चले जाने के बाद, रूपधर पागल की तरह गुफा में इधर उधर चहलकदमी करने लगा। वह इस समस्या में उलझा हुआ था कि उस राक्षस से कैसे बदला लिया जाये, जिसने उसके कई साथियों का निगल लिया था। उसने बुद्धिमति देवी की प्रार्थना की, ताकि उसको यह ऐसी बुद्धि दे, जिससे कि उसे कोई उपाय सूझ सके।

आखिर उसे एक उपाय सुझा।

गुफा में रहनेवाले राक्षस ने, छड़ी की तरह उपयोग करने के लिये एक लकड़ी रख रखी थी। वह अभी हरी थी। वह एक मस्तूल के बराबर मोटी थी। शायद उतनी ऊँची भी। रूपधर ने इस लकड़ी में से मनुष्य के बराबर लकड़ी कटवाई। उसने उसके एक सिरे को खूब नुकीला बना दिया। आग में तपाकर उसको कूड़े में छुपा दिया। रूपधर राक्षस की आँख उससे फोड़ देना चाहता था, जब कि रात में वह सो रहा हो।

यह काम वह अकेला नहीं कर सकता था। इसलिये उसने चार और आदमियों को इस काम के लिए नियुक्त किया। वे भी मान गये।



शाम होते ही, राक्षस अपने गल्ले को गुफा में हाँक लाया।

बकरियों का दूध निकालकर उसने गुफा का दरवाजा रोज की तरह बन्द कर दिया। फिर दो ग्रीक सैनिकों को पकड़कर खा गया। रूपधर ने एक लकड़ी के पात्र में अपने पास जो शराब थी, उसे उसमें डालकर, राक्षस के पास ले गया और उससे यों कहा:

"भाल लोचन! इस शराब को जरा चखकर तो देखो। तुम मनुष्य के माँस का स्वाद जानते हो, पर शराब का स्वाद नहीं जानते। यह बढ़िया शराब में तुम्हारे लिये लाया हूँ। परन्तु मैं देख रहा हूँ कि तुम बहुत खराब हो। हम पर बिल्कुल दया नहीं है। अगर तुम्हारा व्यवहार ऐसा ही रहा तो क्या तुम्हें कोई देखने आयेगा? हमने तो समझा था कि तुम हमारे साथ अच्छा व्यवहार करोगे।"

राक्षस रूपधर के दिये हुए शराब को झट गटक गया। उसे वह बड़ी स्वादिष्ट लगी।

"अगर यह शराब और दो तो दो। मैं और भी पीना चाहता हूँ। यह भी बताओ, तुम्हारा नाम क्या है! मैं, तुम्हारा, अपनी रीति के अनुसार आतिथ्य-सत्कार करूँगा। हम यहाँ अंगूर की शराब पीते तो हैं, पर उसका यह स्वाद नहीं होता।" राक्षस ने कहा।

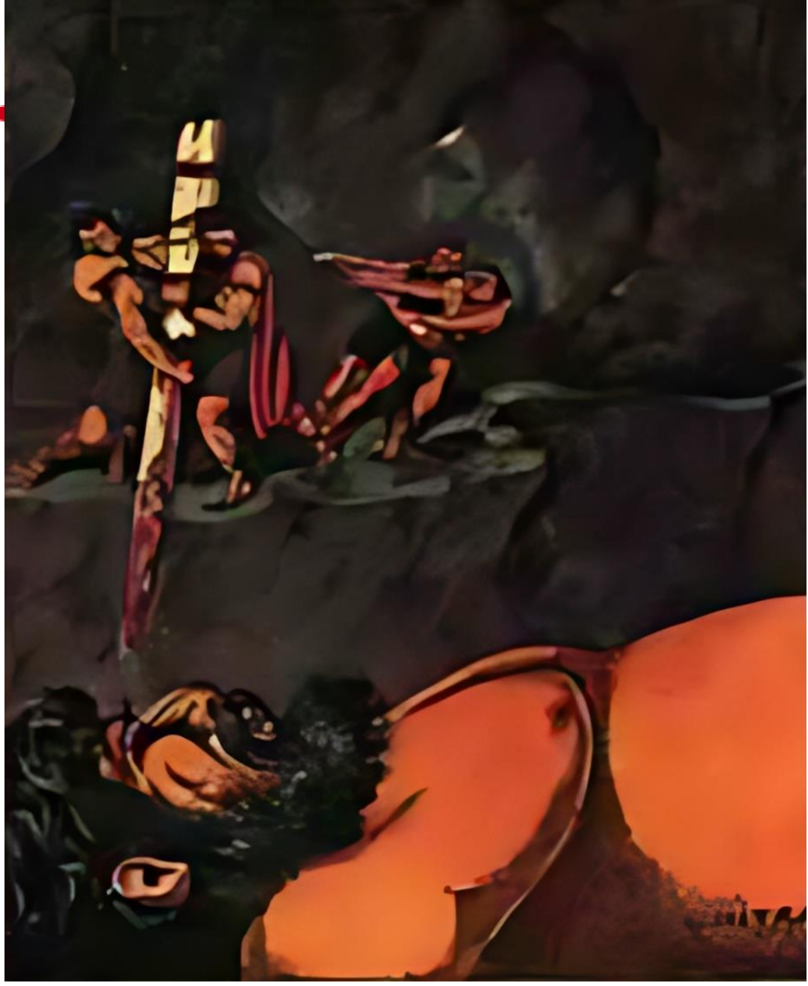
राक्षस के यह कहने पर भी रूपथर सावधान रहा। "मेरा नाम ऐरा गैरा है। देखो, मेरा अच्छी तरह आतिथ्य सत्कार करना।" उसने कहा। उसने लकड़ी के पात्र में राक्षस को तीन बार शराब दी।

"अच्छा, तो ऐरे गैरे! सुन मैं तुझे आखिर में खाऊँगा। जब तक औरों को

खतम न कर लूँगा, तब तक तेरी खबर न लूँगा। यही हमारा अतिथि सत्कार है। समझ गया?" राक्षस ने बड़े जोर से हँसते हुए कहा। यह कहते ही उसका होश जाता रहा और वह नशे में चूर हो नीचे गिरकर सोने लगा।

रूपधर ने कूड़े में से वह लकड़ी निकाली। उसके सिरे को आग में रखा। अपने साथियों की हिम्मत बढ़ाई। थोड़ी देर में वह लकड़ी जलकर लाल हो गयी। रूपपर के अनुचरों ने असाधारण साहस बटोर लिया। रूपभर उस लकड़ी को वहाँ ले गया, जहाँ राक्षस सो रहा था। जलती लकड़ी को उसने राक्षस की आँख में पुसेड़ दिया।

राक्षस गरजता हुआ उठा। उसके गर्जन से सारी गुफा गूँज उठी। उसने अपनी आँख में से जलती लकड़ी को दूर निकाल कर फेंक दी और भाल लोचनों के लिए चिल्लाने लगा। आसपास की गुफाओं में रहनेवाले भाल लोचन उसका चिल्लाना सुन भागे भागे आये। उन्होंने गुफा के बाहर से पूछा-"क्यों, क्या हुआ? क्यों आधी रात को चिल्ला चिलाकर हमारी नींद खराब



करते हो? क्या कोई तुम्हारी भेड़ बकरियों को भगा ले गया है? या कोई तुम्हें ज़बरदस्ती या धोखा देकर मार रहा है?"

"हाँ, हाँ! मुझे ऐरा गैरा पोखा देकर मार रहा है।" गुफा के अन्दर से राक्षस ने कहा।

"ऐरा गैरा क्या और उसका मारना क्या? तुम अजीब बात कर रहे हो। जाओ, चुपचाप सो जाओ, तबीयत अगर ठीक नहीं है, तो सवेरे तक ठीक हो जायेगी।" यह कहकर और भाल लोचन अपनी अपनी गुफा की ओर चले गये। उसके बाद राक्षस, देख तो सकता नहीं



उनके शरीर पर बाल भी खूब बढे हुए थे। रूपधर ने तीन तीन भेड़ों को एक साथ बाँध दिया और बीचवाली भेड़ की पीठ के नीचे अपने एक सैनिक का बाँध दिया। बचे हुए अनुचरों के लिए उसने तीन तीन भेड़ों को चुना। वह अकेला रह गया। उसने अपने लिये सब से मोटी बड़ी भेड़ चुनी।

थोड़ी देर बाद सवेरा हुआ। भेड़ बकरियाँ चरने के लिए बाहर जाने लगी। गुफा के दरवाजे पर बैठा राक्षस अब भी दर्द के कारण कराह रहा था। वह भेड़-बकरियों की पीठ पर हाथ रखकर देखता आता था और उन्हें बाहर जाने देता था। उसको यह न ख़याल था कि उसके शत्रु उनके नीचे भी हो सकते थे। अनुचरों के चले जाने के बाद, रूपधर अपनी चुनी हुई भेड़ के पेट के बाल पकड़ कर, उसके साथ बाहर चला आया। द्वार पर राक्षस ने उस भेड़ की पीठ सहलाते हुए कहा- "अरे, रोज तो सब से पहले जाया करती थी, आज सब से पीछे जा रही हो, आलसी! क्या तू इस फिक्र में मरी जाती है कि ऐरे गैरे ने, तेरे मालिक को

था। टटोलता टटोलता, वह गुफा के दरवाजे के पास, पत्थर एक तरफ हटाकर, रास्ता रोक कर बैठ गया। अगर ग्रीक बाहर जाने की कोशिश करते, तो वह उन्हें पकड़ना चाहता था।

पर रूपधर उतना नादान न था, जितना कि राक्षस उसे समझता था। उस राक्षस के चुंगल से बचकर बाहर जाने के लिए उसने बहुत पहले ही कई उपाय सोच रखे थे। उसमें से एक उपाय उसे बहुत अच्छा जँचा।

वह यह था। उस राक्षस की भेड़ें, खा-पीकर खूब मुटियायी हुई थीं।

खूब पिलाकर उसकी आँख फोड़ दी है? उसने कुछ नहीं किया। मैं उसकी पर लूँगा। फिक्र न कर।" कहते हुए उसने उसे बाहर हाँक दिया।

भेड़ जब गुफा से थोड़ी दूर चली गयी, तो रूपधर उसके बाल छोड़कर खड़ा हो गया फिर उसने अपने अनुचरों को भेड़ों की पीठ से खोला। इस तरह अकलमन्दी से, राक्षस के पञ्जे से निकलकर सब के सब बाहर आ गये। फिर रूपधर और उसके सैनिक, किनारे पर खड़ी अपनी नौका में जा बैठे।

जहाज में बैठे बैठे उसके साथी इस फिक्र में थे कि रूपपर और उनके साथियों का क्या हो गया होगा। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि उनके कुछ साथियों को राक्षस ने अपना आहार बना लिया था तो ये बहुत रोये धोये।

रूपधर ने उनको समझाते हुए कहा-"यह शोक करने का समय नहीं है। अब हमारे पास समय नहीं है। जितनी भेड़ बकरियाँ मिले, उतनी पकड़ लाओ। हमें चल पड़ना



चाहिए।" रूपधर के अनुचरों ने वही किया। वे नौका को समुद्र में ले जाने लगे। अब नौका थोड़ी दूर चली गई, तो रूपधर खड़ा होकर चिल्लाया- "अरे पापी, भाल लोचन! तूने सोचा था कि मैं और मेरे साथी योंही तेरे हाथ में फँस जायेंगे? पर हम तेरे हाथ में नहीं आये। अतिथि को मारकर खाने की तुझे खूब सजा दी है। कम से कम अब तो अकल ठीक कर ले।" रूपधर का चिल्लाना राक्षस को सुनाई दिया। उसने मुस्से में, एक बड़े चट्टान को लेकर जिस तरफ से रूपधर की आवाज आ रही थी, उस तरफ फेंका।

यह चट्टान रूपधर की नौका के पास गिरी। उसके कारण एक तरङ्ग पैदा हुई, जो नौका को फिर किनारे पर ले जाने लगी।

रूपधर ने नौका को समुद्र की ओर धकेला। उसने अपने अनुचरों को जल्दी जल्दी चप्पू लगाने के लिए कहा। जब इस बार नौका समुद्र मैं कुछ दूर चली गई तो रूपधर ने फिर राक्षस को चिढ़ाना चाहा। उसके अनुचरों ने उससे बहुत कहा, पर यह न माना। उसने जोर से यों कहा-

"अरे राक्षस! अगर तुझ से कोई पूछे कि किसने तेरी आँख फोड़ी थी, तो कहना कि यह रूपधर की करतूत थी। कहना कि ट्रोय का वह विजेता है। वह इवाका का रहनेवाला है।"

फिर राक्षस ने एक बड़ा चट्टान उठाकर जोर से उसका निशाना बनाकर फेंका। वह रूपधर की नौका के बहुत समीप ही गिरी। पर उससे जो तरङ्गें पैदा हुई, वे नौका को और दूर ले गई।

जल्दी ही रूपधर और उसके अनुचर, अपने जहाजों के पास चले गये। जहाज में ग्रीक सैनिक, रूपधर के कुशल-क्षेम के बार में बहुत चिन्तित थे। उन्हें देखकर वे बहुत खुश हुए। जो राक्षस का भोजन बन गये थे, उनके बारे में उन्होंने अपना शोक भी प्रकट किया।

रूपधर की लाई हुई भेड़ों को, आपस में बराबर बाँटकर भून कर उन लोगों ने खाया। खूब शराब पी, उस दिन वे रात को किनारे पर सोये। अगले दिन, रूपपर ने लँगर उठाकर, जहाजों को ले जाने की रूपधर ने आज्ञा दी। वे सब फिर समुद्र यात्रा पर निकल गये।

(अभी और है)





चान्दनी की सीढ़ी

उस समय श्री कृष्ण देवराय, विजय नगर साम्राज्य के सम्राट थे। विजय नगर में रोज एक चोर एक एक घर में चोरी किया करता। उसको पकड़ने के बहुत प्रयत्न किये गये। पर कोई प्रयत्न सफल न हुआ। चोरियाँ होती ही रहीं।

तेनाली रामलिङ्ग ने सोचा कि कुछ भी हो, इस चोर को पकड़ना ही होगा। उसने ऐसी एक जगह पर, जहाँ पाँच-दस आदमी जमा थे, जाकर यह कहा-"मुझे यह डर है कि यह चोर कब हमारे पर धावा बोल दे। क्यों कि हमारे पर बहुत सा रुपया रखा है।"

यह बात चोर के कान में भी पड़ी कि तेनाली रामलिङ्ग के पर बहुत सा धन था। उसने चोरी करने की ठानी। तेनाली रामलिङ्ग भी यही चाहता था कि वह यह जानकर उसके पर आये। उसने अपनी पत्नी को अच्छी तरह समझाया कि जब चोर घर में आये तो यह कैसे उससे बोले, कैसे उससे व्यवहार करे।

एक दिन चोर तेनाली रामलिङ्ग के पर आया। रामलिङ्ग तो उसके लिए रात जगा कर ही रहा था। छत पर कुछ आहट सुनते ही उसने अपनी पत्नी को इशारा किया।

तुरन्त उसने जोर से कहा-"मैंने कहा, कहीं यह चोर हमारे पर न आ पड़े! मुझे तो डर लग रहा है।"

"आने दो.... मगर वह घर में से हमारा रुपया उठाकर ले गया तो उसका चौगुना लाकर तुम्हें दूँगा। तुम घबराती क्यों हो?" रामलिङ्ग ने कहा।

"मैं रोज पूछना चाहती थी, पर भूलती जा रही हूँ.... आप यह सोना, जेवर

जवाहरात कहाँ से लाते हैं?" रामलिङ्ग की पत्नी ने पूछा।

"....क्यों, यों चिला रही हो?....मैं यह सब चोरी करके लाया हूँ।" रामलिङ्ग ने कहा।

"आप कहाँ चोरी करते हैं?" पत्नी ने पूछा।

"....यह सब तुम क्यों जानना चाहती हो? फालतू बात न करो। सो जाओ।" रामलिङ्ग ने कहा।

"नहीं.... बताओ.... मैं सुने बगैर न रहूँगी! चोरी करते हो तो क्या तुम्हें कोई पकड़ता नहीं?" पत्नी ने पूछा।

"मुझे भगवान भी नहीं पकड़ सकते। समझी? मेरे पास ऐसा एक मन्त्र है।" रामलिङ्ग ने बड़े गर्व से कहा।

"क्या है यह मन्त्र?" पत्नी ने कहा।

रामलिङ्ग कुछ देर झुञ्झलाया। आखिर उसने कहा-"तुम मुझे शनि की तरह पकड़ी हुई हो, सुनो। मैं अपना रहस्य बताता हूँ। राजा के किले में खजाना है। देखा है कभी? यह पाँच गज ऊँचा है। छत के पास एक ऐसा रोशनदान है, जिसमें से



मनुष्य आ जा सकता है। मैं क्या करता हूँ, मालूम है? चान्दनी रात को, खजाने की छत पर चढ़ जाता हूँ। रोशनदान से अन्दर चान्दनी के जाने तक प्रतीक्षा करता हूँ। फिर "ओं भ्रान्ति, ओं भ्रान्ति" का तीन बार पाठ करता हूँ। यह मन्त्र पढ़ते ही, चन्द्रमा की किरणें, रस्सी बन जाती हैं और मेरे हाथ में आ जाती हैं। उनके सहारे मैं खजाने में उतर जाता हूँ। मैं जो कुछ चाहता हूँ, बटोर लेता हूँ। फिर किरणों को पकड़कर रोशनदान से बाहर आ जाता हूँ। कोई नहीं जानता कि कैसे चोरी होती है। इस तरह चाँदनी

की सीढ़ी के सहारे मैं राजा का खजाना लूट रहा हूँ। इसलिए अभी तक मुझे कोई पकड़ नहीं पाया है।"

"अच्छा, तो यह बात है।" रामलिङ्ग की पत्नी यह कहती कहती आँखें मुन्दकर सोने का अभिनय करने लगी।

चोर ने पति-पत्नी की बातचीत सुनी। वह मामूली चोरियों से ऊब गया। उसने सोचा, अगर चोरी ही करनी है, तो राजा के खजाने में चोरी करूँगा।

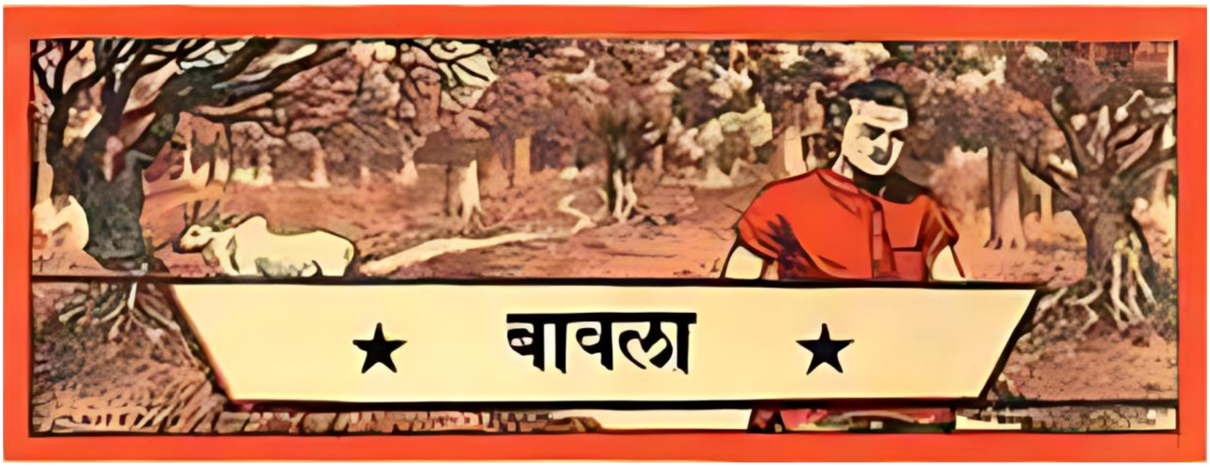
अगले दिन वह मकानों की छतों को पार करता हुआ खजाने की छत पर पहुँचा। रामलिङ्ग का बताया हुआ रोशनदान उसे दिखायी दिया। वह भूमि से करीब करीब पाँच गज़ ऊपर था। तो भी चोर न घबराया। वह तब तक इन्तज़ार करता रहा, जब तक चन्द्रमा की किरणें खजाने में न गयीं। फिर उसने तीन बार मन्त्र पाठ किया "ओं, भ्रान्ति, ओं, भ्रान्ति"। रोशनदान में पैर रख, चन्द्रमा की किरणों को पकड़ने का प्रयत्न कर अन्दर कूद गया।

उसके हाथ में सिवाय हवा के कुछ न आया। क्योंकि यह बहुत ऊँचाई से गिरा था, इसलिए उसके दोनों पैर टूट गये। अगले दिन जब राज-सैनिकों ने खजाना खोला तो चोर निस्सहाय पड़ा था। उन्होंने उसे आसानी से पकड़ लिया। चोर के पास चोरी का माल भी बरामद हुआ।

बाद में तेनाली रामलिङ्ग ने भरे दरबार में बताया कि उसने चोर को पकड़ने के लिए क्या चाल चली थी। दरबारी ठहाका मार कर हँसे।

चोर को पकड़वाने के कारण राजा ने रामलिङ्ग को बहुत-सा इनाम दिया।





एक गाँव में तीन भाई रहा करते थे। उनमें से तीसरा निरा बाबला था। पिता के मर जाने के बाद, दोनों भाइयों ने जमीन-जायदाद का बटवारा कर लिया तीसरे भाई को उन्होंने केवल एक पुराना सन्दूक दिया।

एक दिन बड़े भाई, अपना माल लेकर पैठ गये। तीसरे ने भी सोचा कि क्यों न वह भी पेंठ जाये। एक बैल के सीङ्ग में रस्सी बाँधी और रस्सी हाथ में लेकर वह भी पेंठ के लिए निकला।

एक जङ्गल के रास्ते जाते जाते, सीङ्गों से टकराकर एक सूखे पेड़ ने चुरमुर किया। तुरन्त बावले ने रुककर कहा-"क्या तुम इस बैल को खरीदना चाहते हो? बीस रुपये में ले लो। इससे कम में नहीं दूँगा। चाहते हो तो ले हो नहीं तो छोड़ दो। बस।"

सूखे पेड़ ने फिर चुरमुर किया। "पैसे देने के लिए समय चाहिए? कल दिया जा सकता है। यह को बैल।" यह कह, बावले ने बैल को उस सूखे पेड़ से बाँध दिया और खुशी खुशी पर चला गया।

"क्यों वे बावले! तेरा बैल कहीं नहीं दिखाई दिया।" भाई ने पूछा।

"बीस रुपये में बेच दिया है।" बावले ने कहा।

भाइयों ने आधर्य से पूछा-"यह क्या? पैसा कहाँ है?"

"कल तक का समय दिया है पैसे के लिए।" बावले ने कहा। भाइयों ने उसे डाँटा डपटा और वह बात भूल गये।

अगले दिन सवेरे बावला सूखे पेड़ के पास गया। सूखा पेड़ हवा में झूमता झूमता

श्री एम. धर



चुरमुर कर रहा था। वहाँ बैल न था। बैल को कोई खोल ले गया था।

बावले ने सूखे पेड़ से कहा-"पैसे देने का वादा किया था। दो।"

पेड़ ने चुरमुर किया।

"कल? आज देने के लिए कहा था, इसलिए मान गया था। क्योंकि तुम अब बहुत मना रहे हो इसलिए मैं कल तक ठहरूँगा।" यह पेड़ से कहकर घर चला गया।

"पैसे ले आये हो?" भाइयों ने उससे उत्कण्ठापूर्वक पूछा।

"नहीं तो। कल तक ठहरना है।" उसने कहा।

"आखिर बैल किसको बेचा है?' उन्होंने पूछा।

"जङ्गल में, सूखे पेड़ को।" बावले ने कहा।

"अरे बेवकूफ!" भाइयों ने डाँटा।

अगले दिन सवेरे वाला, कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर जङ्गल में सूखे पेड़ के पास गया।

"मेरा पैसा मुझे दे दो। तुम्हे मैने उधार क्या दिया कि मेरे भाई मुझे डाँटने डपटने लगे।" बावले ने सूखे पेड़ से कहा।

पेड़ ने झूमते झूमते फिर चुरमुर किया।

"यह नहीं होगा। अब मैं एक क्षण भी प्रतीक्षा न करूँगा। आज मेरा पैसा न दिया तो मैं तुझे कुल्हाड़ी से काटकर ईन्धन बना दूँगा।" बाबले ने कहा।

पेड़ ने फिर चुरमुर किया। बावला तने पर कुल्हाड़ी चलाने लगा। यूँ तो पेड़ सूखा ही था, कुल्हाड़ी की चोट लगते ही यह धड़ाम से गिर गया।

उसका इतनी जल्दी गिरने का एक और कारण यह था कि उसकी जड़ में खोल-सा था। उसमें कुछ चोरों ने अपना चोरी का माल, सोना वगैरह रख रखा था। पेड़ के नीचे गिरते ही, यह खजाना बावले की नज़र में पड़ा।

कुछ सोना जेब में रखकर बावला घर की ओर भागा।

"यह सब सोना तुझे कहाँ से मिला?" उसके भाइयों ने पूछा।

"चार चोट लगी कि नहीं कि पेड़ ने यह सोना उगल दिया। और भी है.... मैं थोड़ा ही लाया हूँ।" बावले ने कहा। उसके भाई उसको लेकर, तुरन्त जङ्गल गये और बाकी सोना लेकर वे घर की ओर चले।

"तू किसी को न बताना कि हमारे पास सोना है। अगर पता लग गया तो खतरा है।" भाइयों ने बाबले से कहा।

"मैं किसी को नहीं बताऊँगा।" बावले ने कहा।

वे कुछ दूर गये थे कि उनको गाँव का पुरोहित मिला। उसने पूछा-"तुम तीनों बोरों में क्या ला रहे हो?" कोई



ऐसी बात न थी, जिसमें पुरोहित अपनी नाक न उड़ाता था।

"परवल" बड़े भाइयों ने कहा। परन्तु तुरन्त बावले ने कहा-"क्या ब्राह्मण पुरोहित को धोखा दिया जा सकता है? यह सोना है पुरोहितजी। चाहे तो भाप देख लीजिए।" कहते हुए उसने अपना मोरा खोल कर दिखाया। सोना देखते ही, पुरोहित चकरा गया। उसने बावले के बोरे में से दो मुट्ठी भर सोना ले लिया।

"हैं.... यह क्या?" कहते हुए बावले ने पुरोहित के सिर पर कुल्हाड़ी मारी।

उसकी चोट से पुरोहित वहीं ढेर हो गया। "यह क्या पागल? तू अपना सिर तो कटवावेगा ही, हमारा भी क्या कटवाकर रहेगा! अब इस शव का कुछ करना होगा।" यह कहते हुए, बड़े भाइयों ने सड़क के किनारे एक गढ़ा खोदा, और उस शव को उसमें दबा दिया।

पर चूँकि यह सब बावले ने देखा लिया था, इसलिए वे रात में वहाँ आये । उन्होंने शव को निकाल कर एक और जगह गाड़ दिया और उस जगह एक बकरी को दवा दिया।

अब थोड़े दिन गाँव में पुरोहित न दिखाई दिया, तो गाँव में तहलका मचा। तब बाबले ने लोगों से कहा- "उसका सिर मैने कुल्हाड़ी से काट दिया था। उसके शव को मेरे भाइयों ने गाड़ दिया था। अगर विश्वास न हो तो आइये, दिखाता हूँ।" वह लोगों को उस जगह ले गया, जहाँ लाश गाड़ी गई थी।

"देखो यहीं गाड़ा है।" वह फावड़ा लेकर खोदने लगा। थोड़ी देर बाद, उसने खोदते खोदते पूछा-"क्या पुरोहित के शरीर पर बहुत बाल थे?"

"हाँ हाँ, थे।" लोगों ने कहा।

"दाढ़ी तो थी ही!" बावले ने कहा।

"सिर पर दो सीङ्ग भी थे न?" बावले ने पूछा।

"सीङ्ग? यह क्या कह रहे हो?" लोगों ने पूछा।

"अगर आप को मेरी बात पर विश्वास नहीं है, तो स्वयं देख लीजिए।" कहते हुए उसने मरी बकरी को उठाकर दिखाया।

ग्रामवासियों का उस पर विश्वास जाता रहा। "यह तो पागल है, इसकी क्या सुनना?" यह वह सब अपने पर चले गये।



CHANDAMAMA (Hindi) SEPTEMBER 1957 Regd. No. M. 5452



म्पभर की यात्राएँ